योगविद्या

वर्ष 4 अंक 6
जून 2015
सदस्यता डाकखर्च – रु 100

भारत यात्रा २०१४ Bharat Yatra 2014

सरस्वती, परमाचार्य, बिहार योग विद्यालय,विश्व योगपीठ, मुंगेर, बिहारके पावन उपस्थिति में

तविभूषित श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के श्रीचरणों में समर्पित

लाज़ा, कोलकाता
2014

Rangmanch Hall, Swabhumi Heritage Plaza, Kolkata
25th - 27th July, 2014

बिहार योग विद्यालय, मुंगेर, बिहार, भारत

हरिः ॐ

योग विद्या का सम्पादन, मुद्रण और प्रकाशन स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के संन्यासी शिष्यों द्वारा स्वास्थ्य लाभ, आनन्द और प्रकाश प्राप्ति के इच्छुक व्यक्तियों के लिए किया जाता है। इसमें बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट तथा योग शोध संस्थान के क्रियाकलापों की जानकारियाँ प्रकाशित की जाती हैं।

सम्पादक – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योग विद्या मासिक पत्रिका है। देर से सदस्यता ग्रहण करने पर भी उस वर्ष के जनवरी से दिसम्बर तक के सभी अंक भेजे जाते हैं।

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर, 811201, बिहार, द्वारा प्रकाशित।

थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, फरीदाबाद, 121007, हरियाणा में मुद्रित।

© Bihar School of Yoga 2015

पत्रिका की सदस्यता एक वर्ष के लिए पंजीकृत की जाती है। कृपया अपने आवेदन अथवा अन्य पत्राचार निम्नलिखित पते पर करें –

बिहार योग विद्यालय
गंगा दर्शन,
फोर्ट, मुंगेर, 811201
बिहार

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु स्वयं का पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।

कुल पृष्ठ संख्या : 58 *(कवर पृष्ठों सहित)*

कवर फोटो : स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, कोलकाता, 2014

अन्दर के रंगीन फोटो : 1-4: स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की कोलकाता योग यात्रा, 2014

आध्यात्मिक मार्गदर्शन

आदर्श का महत्त्व

बड़ी शोचनीय बात है कि अधिकतर लोगों का जीवन में कोई आदर्श नहीं होता। पढ़े-लिखे लोग भी किसी आदर्श को पसन्द नहीं करते। वे लक्ष्यहीन जीवन व्यतीत करते हैं और इसलिए एक तिनके के समान इधर-उधर दिशाहीन भटकते हैं। वे जीवन में बिल्कुल प्रगति नहीं करते। मनुष्य जीवन पाना कितना कठिन है और फिर भी लोग जीवन में एक आदर्श को अपनाने का महत्त्व नहीं समझते।

'खाओ, पीओ और मस्त रहो' की धारणा लोभी भोगवादियों द्वारा अपनाई जाती है। इस मत के आज असंख्य अनुयायी हैं और यह गणना प्रतिदिन बढ़ती ही जा रही है। यह विचारधारा व्यक्ति को क्लेश और दुःख के अन्धकार की ओर ही ले जायेगी।

वह व्यक्ति धन्य है जो अपने विचारों का उत्थान करता है, एक उदात्त आदर्श रखता है तथा अपने आदर्श पर जीने के लिए कठोर परिश्रम करता है।

– श्री स्वामी शिवानन्द सरस्वती

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, फोर्ट, मुंगेर - 811201, बिहार के लिए स्वामी ज्ञानभिक्षु सरस्वती द्वारा प्रकाशित एवं मुद्रित
मुद्रक – थॉमसन प्रेस इण्डिया लिमिटेड, 18/35 माइलस्टोन, दिल्ली मथुरा रोड, फरीदाबाद - 121007, हरियाणा
स्वामित्व – बिहार योग विद्यालय **सम्पादक** – स्वामी शक्तिमित्रानन्द सरस्वती

योगविद्या

वर्ष 4 अंक 6 • जून 2015
(प्रकाशन का 53 वाँ वर्ष)

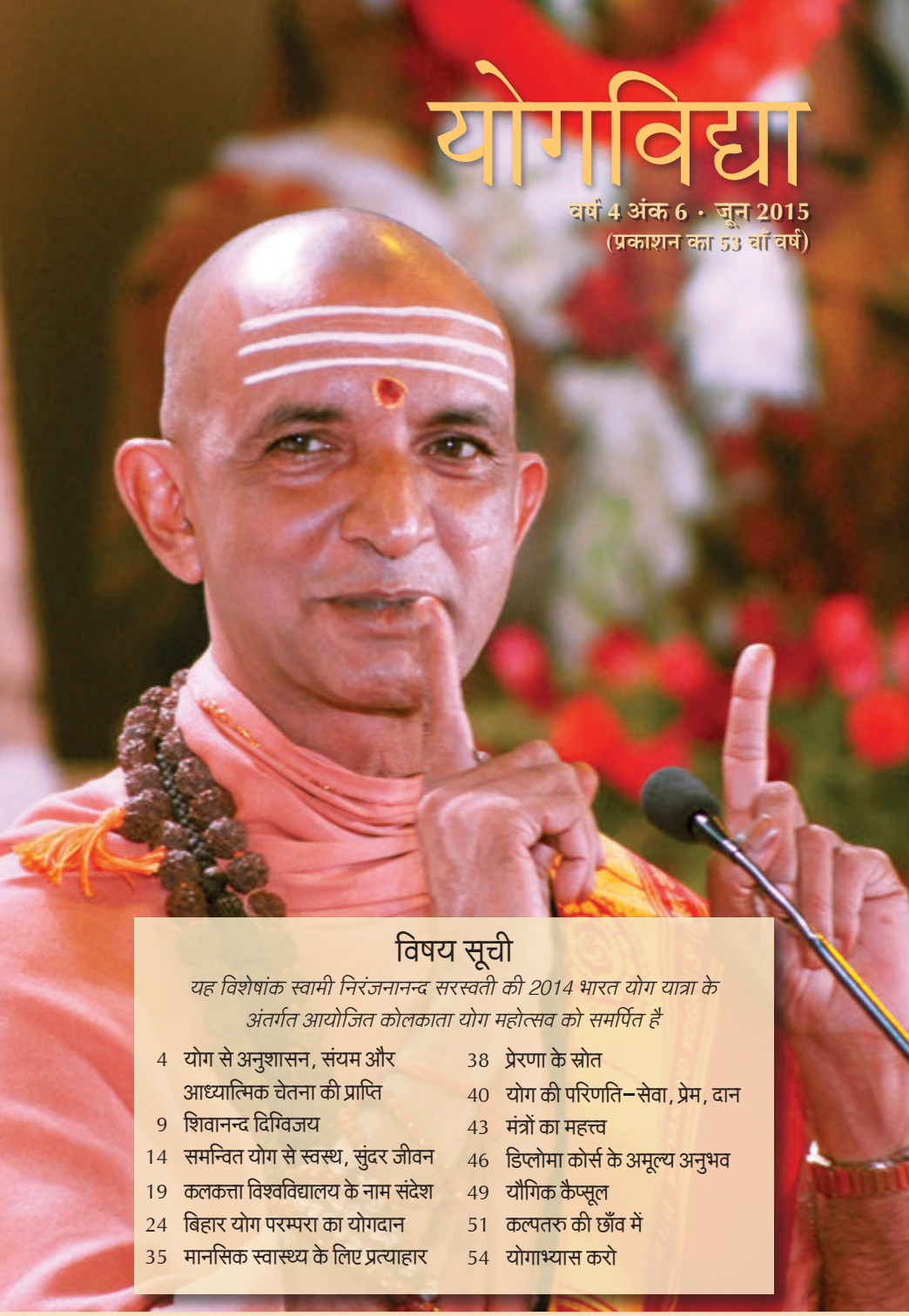

विषय सूची

यह विशेषांक स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती की 2014 भारत योग यात्रा के अंतर्गत आयोजित कोलकाता योग महोत्सव को समर्पित है

4 योग से अनुशासन, संयम और आध्यात्मिक चेतना की प्राप्ति
9 शिवानन्द दिग्विजय
14 समन्वित योग से स्वस्थ, सुंदर जीवन
19 कलकत्ता विश्वविद्यालय के नाम संदेश
24 बिहार योग परम्परा का योगदान
35 मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रत्याहार
38 प्रेरणा के स्रोत
40 योग की परिणति–सेवा, प्रेम, दान
43 मंत्रों का महत्त्व
46 डिप्लोमा कोर्स के अमूल्य अनुभव
49 यौगिक कैप्सूल
51 कल्पतरु की छाँव में
54 योगाभ्यास करो

तपस्विभ्योऽधिको योगी ज्ञानिभ्योऽपि मतोऽधिक:। कर्मिभ्यश्चाधिको योगी तस्माद्योगी भवार्जुन ॥

योग से अनुशासन, संयम और आध्यात्मिक चेतना की प्राप्ति

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जब मनुष्य के जीवन में दु:ख आता है, तब मनुष्य उस दु:ख से निवृत्ति के लिये सुख का मार्ग खोजता है। इसलिये गीता का पहला अध्याय हठयोग या राजयोग नहीं, बल्कि विषाद योग है। विषाद तो दु:ख है, लेकिन इस विषाद के साथ एक शब्द को जोड़ा गया है और वह शब्द है योग, *अर्जुनविषादयोगो नाम प्रथमोऽध्याय:*। विषाद को भी योग क्यों कहा है यहाँ पर? विषाद का सम्बन्ध तो दु:ख, अवसाद, हताशा और द्वंद्व से होता है, लेकिन यहाँ पर विषाद को योग केवल इसी दृष्टिकोण से कहा गया कि जब तक किसी मनुष्य के जीवन में कोई दु:ख नहीं आता, तब तक वह सुख की खोज नहीं करता। जब तक मनुष्य के जीवन में रोग नहीं आते हैं, स्वास्थ्य क्या है, वह जान नहीं पायेगा। जब तक मनुष्य के जीवन में अशान्ति नहीं होती है, शान्ति क्या है, वह समझ नहीं पायेगा। इसलिये यह समझौता तो हमें अपने जीवन के साथ करना ही पड़ता है। विषाद योग का मतलब दु:ख को समझने का प्रयास।

जीवन में जो सुख और दु:ख हैं वे ईश्वर की देन हैं, जिसमें एक दिशा का बोध होता है, और जब हम उस दिशा में अग्रसर होते हैं, तब हमारे जीवन का उत्थान होता है, विकास होता है, सुख की प्राप्ति होती है, शान्ति मिलती है। इसलिये इस बात को याद रखना कि अपने जीवन से दु:ख को दूर करने या दु:ख से भागने का प्रयास नहीं करना। जब दु:ख आता है तो उसे स्वीकार करना और उसके निराकरण के लिये तत्पर रहना। जब ऐसा कर पाओगे तब तुम योग को समझ पाओगे।

हमारे भारतीय दर्शन में दु:खों को तीन वर्गों में वर्गीकृत किया गया है। हम अपने जीवन में जितने भी संघर्षों, परेशानियों और दु:खों को अनुभव करते हैं, उन्हें तीन श्रेणियों में बाँटा गया है। पहली श्रेणी होती है आधिदैविक दु:ख अर्थात् प्रारब्ध दु:ख की। जो दु:ख हमारे भाग्य में लिखा है, हमें प्रारब्ध से मिला है, कर्मों के कारण मिला है और जिससे हम अपने आपको मुक्त नहीं कर पाते हैं, उसे कहते हैं आधिदैविक। दूसरे प्रकार का दु:ख वह होता है जो प्राकृतिक आपदाओं के कारण बाह्य वातावरण से उत्पन्न होता है। उसे कहते हैं आधिभौतिक। तीसरे प्रकार के दु:ख को कहते हैं आध्यात्मिक, अर्थात् वह दु:ख जो भीतर से प्रकट हो रहा है, जो स्वयं के कारण उत्पन्न होता है। स्वयं के कारण उत्पन्न दु:ख ही मनुष्य के जीवन में विषाद के कारण बनते हैं, परेशानी के कारण बनते हैं। ये दु:ख क्यों उत्पन्न होते हैं?

योग कहता है कि मनुष्य अपने आप को समस्याओं से घिरा हुआ इसलिये देखता है कि उसके जीवन में संयम नहीं है। जीवन में संयम का होना आवश्यक है। एक बार संयम आ जाए तब जीवन में परिवर्तन की प्रक्रिया आरम्भ होती है और इस संयम को प्राप्त कराना ही योग का लक्ष्य है।

लोग हमसे कहते हैं कि योग का लक्ष्य समाधि है, क्योंकि ऐसा महर्षि पतंजलि ने लिखा है। लोग हमसे कहते हैं कि योग आत्मज्ञान के लिये करना चाहिये। इस बात को अच्छे से समझिये कि आज योग को अपने जीवन में संयम और अनुशासन लाने के लिये करना है। पूर्वकाल में योग आत्मज्ञान के लिये होता था, लेकिन आज हमारी आवश्यकता आत्मज्ञान नहीं, बल्कि संयम है। इसलिये अब परिभाषा को बदलना जरूरी है। आरम्भ में जब हमारे ऋषि-मुनि योग साधना के बल पर

अपने आपको जानने का प्रयास करते थे, तब उनके लिये आत्मा या आंतरिक अनुभव को प्राप्त करना कठिन नहीं था। उनकी जीवन शैली अलग थी, समाज का वातावरण अलग था, परिस्थितियाँ अलग थीं, शिक्षा और अनुशासन अलग थे। मनुष्य के जीवन में, उसके आचरण में, उसके व्यवहार में, उसके विचार में, उसके आहार में, हर चीज में अधिक संयम रहता था। जब मनुष्य एक संतुलित जीवन व्यतीत करता है तब उसे अपने साथ कम संघर्ष करने की आवश्यकता होती है और वह सहजता के साथ अंतर्यात्रा में जाकर आत्मज्ञान को प्राप्त कर सकता है। किन्तु जब इन्द्रियों में, मन में, बुद्धि और भावनाओं में चंचलता आती है तब उस समय आत्मज्ञान योग का लक्ष्य नहीं होता। उस समय शान्ति लक्ष्य होता है, अपने आपको निर्विचार करना लक्ष्य होता है।

आप देखोगे कि महात्मा बुद्ध ने आध्यात्मिक साधनाओं का प्रयोजन आत्मज्ञान नहीं बताया। उन्होंने कहा, 'निर्वाण'। साधना वही है, पद्धति वही है, ध्यान वही है, दर्शन वही है, लेकिन उन्होंने आत्मज्ञान को लक्ष्य नहीं कहा। उन्होंने कहा कि साधना के द्वारा निर्वाण की अवस्था को प्राप्त करो। निर्वाण को उन्होंने यह कहकर परिभाषित किया कि तुम अपने मन की चंचलता को शान्त कर पाओगे और शून्य अवस्था को प्राप्त कर सकोगे। निर्वाण का यही अर्थ होता है–मानसिक शून्य अवस्था को प्राप्त करना। जहाँ पर मन में कोई उद्वेग या चंचलता न हो, मन स्थिर और शान्त हो। इस प्रकार महात्मा बुद्ध के समय अध्यात्म की परिभाषा आत्मज्ञान से बदलकर हो गई निर्वाण–आंतरिक स्थिरता एवं शान्ति की प्राप्ति और चंचलता से मुक्ति।

अब इस युग में जब परिस्थितियाँ बदल रही हैं तो योग की परिभाषा क्या होनी चाहिये? हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी ने 1940 के दशक में इस बात को कहा था कि आने वाले युग में योग का उद्देश्य आत्मज्ञान, समाधि, निर्वाण, मोक्ष या ईश्वर दर्शन नहीं, बल्कि मनुष्य के जीवन को व्यवस्थित, अनुशासित और प्रतिभा से युक्त करना है। जब मनुष्य अपने जीवन को व्यवस्थित, अनुशासित, संयमित और प्रतिभा से युक्त कर पायेगा, तभी वह अपने जीवन में आगे बढ़ सकता है। इसीलिये जब स्वामी शिवानन्द जी ने इस युग की आवश्यकतानुसार योग की व्याख्या की, तब उन्होंने केवल तीन बिंदुओं को सामने रखा–योग अभ्यास के द्वारा अपने मस्तिष्क मतलब बुद्धि, अपने हृदय मतलब भावना और अपने हाथों मतलब कर्म की क्षमता को रचनात्मक एवं सकारात्मक बनाना योग का वर्तमान उद्देश्य है। जब हम ऐसा कर पायेंगे तो हमारे जीवन का जो विकास होगा, वह हमें सुख और शान्ति की ओर ले जायेगा।

स्वामी शिवानन्द जी इस बात को स्पष्ट करने के लिये एक दृष्टांत भी देते थे। कहते थे कि एक अन्धा आदमी अगर सूर्य को देखना चाहता है तो सूर्य को देखना

उसके लिये महत्त्वाकांक्षा है, आवश्यकता नहीं है। अन्धे आदमी की आवश्यकता क्या है? दृष्टि को प्राप्त करना। एक बार जब वह अन्धा आदमी दृष्टि को प्राप्त कर लेता है तब केवल सूर्य को ही नहीं, समस्त सृष्टि को देख सकता है।

अगर हम चाहें कि ईश्वर दर्शन, आत्मज्ञान या मोक्ष हमारे जीवन का लक्ष्य हो तो यह वैसा ही हुआ कि अन्धा आदमी सूर्य को देखना चाहता है। मोक्ष आपके जीवन का लक्ष्य कैसे हो सकता है जब आपमें इतनी वासनायें भरी हैं, इतनी आसक्तियाँ हैं। एक आदत को परिवर्तित करने में आपका हाल खस्ता हो जाता है तो मोक्ष क्या मिलेगा! एक शराबी को कह दो कि एक महीने तक शराब मत पीयो। कर पायेगा क्या? नहीं। एक व्यभिचारी को कह दो कि एक महीना व्यभिचार मत करो। व्यभिचारी रोक पायेगा क्या? नहीं। अगर हम आपसे कहें कि आप एक दिन 24 घण्टे हमेशा प्रसन्न रहिये, दु:खी मत होइये, अपना मूड मत बदलिये, केवल दिनभर मुस्कराते रहिये। आप इतना सरल काम भी नहीं कर पाओगे। एक घण्टा भी अगर आप अपने मूड को प्रसन्न रख सकते हो तो बहादुर हो। आपका मूड हर क्षण बदलता है। आपकी आवश्यकतायें और महत्त्वाकांक्षायें हर घण्टे बदलती हैं। हर घण्टे एक नयी इच्छा का जन्म होता है। ऐसे में आदमी मोक्ष की कामना कर पायेगा क्या, उसके लिये प्रयास भी कर पायेगा क्या? यह अपने आपको धोखा देना है। आपके भाग्य में मोक्ष नहीं है, ईश्वर दर्शन नहीं है, आत्मज्ञान नहीं है। आपके भाग्य में लिखा है कि एक विशिष्ट अनुशासन के द्वारा अपने जीवन को संयमित करके भौतिक स्तर पर सुख को प्राप्त करो, मानसिक स्तर पर शान्ति को प्राप्त करो और आध्यात्मिक स्तर पर अपने जीवन को आध्यात्मिक चेतना से युक्त करो। ये हमारे गुरु जी के शब्द हैं।

एक बार हमारे गुरु जी से किसी ने पूछा था कि मनुष्य जीवन का लक्ष्य क्या होता है। उन्होंने एक ही वाक्य में इसका उत्तर दिया था–'आध्यात्मिक चेतना को प्राप्त करना ही मनुष्य जीवन का उद्देश्य है'। यह जो आध्यात्मिक चेतना या सजगता है, उसे प्राप्त करने के लिये बुद्धि, भावना और कर्म, तीनों में योग होना है, सामंजस्य होना है, संतुलन होना है। इसी सामंजस्य और संतुलन को योग कहा गया है। हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी तथा हमारे गुरु स्वामी सत्यानन्द जी ने हमेशा इस बात पर जोर दिया है कि हर व्यक्ति के जीवन में योग का व्यावहारिक स्वरूप विविध अभ्यासों का संग्रह होना चाहिये।

मान लीजिए कि आपको पालक की सब्जी बनानी है। क्या आप एक किलो पालक, एक लीटर पानी, एक किलो नमक, एक किलो मसाला, सब एक ही अनुपात में बर्तन में डालते हो? नहीं। अगर सभी को एक ही अनुपात में डालोगे तो सब्जी नहीं खा पाओगे। सबका अनुपात निश्चित है। इतना पानी, इतनी सब्जी, इतना नमक, इतना मसाला, इतना प्याज, इतना लहसुन, इतना टमाटर, सबका

एक अनुपात होता है। उसी प्रकार योग में भी अभ्यासों का एक अनुपात होता है। यह नहीं कि एक घण्टा आसन कर रहे हैं, एक घण्टा प्राणायाम कर रहे हैं, एक घण्टा ध्यान कर रहे हैं, उसमें फिर आप अपने जीवन को ऐसी सब्जी बना दोगे जिसका स्वाद आप खुद नहीं चख पाओगे। हो सकता है कि बहुत-से लोग यहाँ पहली बार योग करने आये हों, लेकिन मैं तो पचास साल से लोगों को योग करते देख रहा हूँ और देखता हूँ कि इन पचास वर्षों में कौन कितना आगे बढ़ा है, उसकी जीवनशैली क्या है, उसके विचार क्या हैं। मैं यही देखता हूँ कि जो भी अभ्यास करता है, वह शीघ्र और तीव्र परिणाम के लिये करता है। एक सप्ताह तक तो अपने आपको खूब रगड़ देते हैं और उसके बाद उनकी बैट्री, उनकी रुचि समाप्त हो जाती है। यह योग नहीं है।

महर्षि पतंजलि से जब पूछा गया था कि योग किसको कहते हैं तो उन्होंने एक सूत्र में जवाब दिया– *अथ योगानुशासनम्* अर्थात् योग एक व्यवस्था है, एक अनुशासन है। उनसे फिर पूछा गया कि इस अनुशासन से, व्यवस्था से क्या होगा, तो उन्होंने कहा कि योग के इस अनुशासन से चित्तवृत्तियों का निरोध होगा– *योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः*। उनके चेलों ने फिर पूछा कि यदि चित्तवृत्तियों का निरोध हो जाए तो उसका परिणाम क्या होगा। तब महर्षि पतंजलि उसका उत्तर देते हैं, 'उसका परिणाम होगा कि तुम स्वयं को जान पाओगे– *तदा द्रष्टुः स्वरूपेऽवस्थानम्*।' चित्तवृत्तियों के निरोध का परिणाम है कि तुम स्वयं को जान पाओगे, स्वयं को देख पाओगे। इन तीन सूत्रों में ही उन्होंने योग की सम्पूर्ण व्याख्या की है। अनुशासन, मानसिक संयम और स्वयं को जानना–यही है योग।

–25 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

शिवानन्द दिग्विजय

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

स्वामी सत्यानन्द सरस्वती, अपने महान् गुरु, स्वामी शिवानन्द जी की सन् 1950 की चिरस्मरणीय अखिल भारतीय दिग्विजय यात्रा के प्रत्यक्ष साक्षी और अभिन्न सहभागी रहे। उनके द्वारा लिखित पुस्तक 'शिवानन्द दिग्विजय' से इस अद्भुत यात्रा के कलकत्ता चरण की कुछ प्रेरणास्पद झांकियाँ यहाँ प्रस्तुत की जा रही हैं

22 सितम्बर को हम माँ काली की पावनी भूमि में प्रविष्ट हुए। प्रात:काल के अरुणोदय ने कलकत्ते की वैभव-सम्पन्ना नगरी में हमारे अनन्त गुरुगणभूषित स्वामी जी को दिग्विजयी मुस्कान से आवेष्टित देखा।

हम कलकत्ते पहुँचे ही थे कि 'जन गण मन' की लोकप्रिय श्रुति ने आगत-जनता के हृदयों को महत्त्वमय-स्फुरण से संचारित कर दिया। ब्रिटिश साम्राज्य की वह पुरातन भारतीय राजधानी अपने वैभव-सम्पन्न पुत्रों के रूप में, स्वामी जी के राजकीय सम्मान का दृश्य देखने आतुर थी। राजराजेश्वर भी सम्भवत: इस प्रकार के विजयाभिनन्दन से वंचित ही रहे होंगे। परन्तु हमारे दिग्विजयी-राजराजेश्वर साम्राज्यवादी-सम्राटों के समान न थे। वे प्रेम और स्नेह के युगातीत अवतार थे। राज्य-श्री उनके पाँव दबाती थी और लोक-वैभव उनके इशारों पर नाचता था।

श्री स्वामी जी के दर्शनों के लिए कलकत्ते के प्रख्यात धन-कुबेर उपस्थित थे तो साधारण जनता भी उनके कन्धों से कन्धा मिलाए थी। विश्व की एक-परिवार-परायणता का क्या उज्ज्वल दृष्टान्त था! स्वामी जी के दर्शनों की लालसा ने मानव-भेदों का निष्कासन कर दिया था। अत: सामाजिक-विभिन्नता के विचारों को तिलांजलि देकर, धनिक और गरीब, हाथों से हाथ मिलाए, स्वामी जी के दर्शनों की आकांक्षा में एक भूमि पर साथ-साथ खड़े थे। जिस भेदवाद ने सामाजिकता को जन्म दिया है, उसी की जटिल-गुत्थी को सुलझाते हुए, स्वामी जी मानो सन्देश दे रहे थे—'यही विश्व-बन्धुत्व की कुंजी है। यही आध्यात्मिकता है और यही मानव की समस्याओं का एकमात्र सिद्धिकरण है।'

माँ काली की पवित्र गोदी में स्वामी जी का विश्वातीत-सम्मान हुआ। माँ की गोद के वे पवित्र-पुष्पदल महिमामय स्वामी जी का आलिंगन करने लगे। 'श्री स्वामी जी महाराज की जय' के विजयनाद से जनता ने महाराज को प्रणाम किया।

कारों की एक पंक्ति नगर की शोभा में अभिवृद्धि करती हुई, गंगा तट पर पहुँची, जहाँ स्वामी जी के निवास के लिए काशी बाबू तथा अन्य सहयोगियों द्वारा अति-रमणीय स्थान नियत किया हुआ था। इस भव्य तथा सुरम्यातीत भवन से गंगा के उस पार, दिग्प्रज्ज्वलित-वर्चस्व की विशालता में एक अविस्मरणीय सन्तपुरुष

के जीवनादर्श का मन्दिर, सात्त्विक आलोक द्वारा माँ काली के उपासकों का प्रिय बना था। वह था सुप्रसिद्ध दक्षिणेश्वर का मन्दिर, जहाँ परमहंस रामकृष्ण के दैवी-जीवन की व्यावहारिकता का सूत्रपात हुआ था। हमारे गुरुदेव को पहुँचे अधिक समय नहीं हो पाया था कि भक्तजनों का समूह आकृष्ट हुआ चला आया। वे आते और श्री स्वामी जी के दर्शनों से सम्प्रोल्लास की स्फूर्ति से संचरित होते और काषाय-वस्त्राविष्ट विजयान्वित-स्वरूप के तेज में मन्त्रमुग्ध से रह जाते। क्षण-क्षण में 'जय शिवानन्द' की श्रुतिप्रिय विजय-लहरी उस विशाल भवन की समृद्धिशालीनता में टकराती और वातावरण की अविस्मरणीय-प्रशस्तिका में तन्मय हो जाती थी।

सूर्य अस्ताचल की ओर शीघ्रता से जा रहा था। हमारे स्वामी जी कलकत्ता विश्वविद्यालय के 'आशुतोष भवन' की ओर जा रहे थे। आज स्वामी जी विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों द्वारा अभिनन्दित होने वाले थे।

सायंकाल के 5 बजे हम विश्वविद्यालय की विद्यान्विता गौरवशाली भूमि में प्रविष्ट हुए तो समस्त आचार्य वर्ग ने श्री स्वामी जी का स्वागत किया। प्रजातन्त्र भारत के भूतपूर्व मंत्री श्रीयुत् श्यामा प्रसाद मुखर्जी के सभापतित्व में सम्मेलन का श्रीगणेश हुआ तथा आंग्ल-विभाग के प्रधान श्री भट्टाचार्य ने लौकिक-विधितया स्वामी जी का संक्षिप्त, परन्तु ओजस्वी परिचय दिया।

अन्तत: स्वामी जी ने अपना संदेश दिया। उनकी वाणी न मालूम किस अमर-शिल्पी की भव्य तथा अनिर्वचनीय सृष्टि थी। उनकी स्वर-लहरियाँ किसी विशाल ज्ञानाम्भोधि से नि:सृत होती हुई, संप्रेक्षकों के हृदय-सागर को आपूर्यमाण करती थीं। वे गाते; तन से, मन से, श्वास और प्राण से—आनन्दोन्मत्त हो; जो चैतन्य के मादकता की अधिक सुन्दर परा-पराकाष्ठा थी और थी मीरा के जीवन की अगम्य तपश्चर्या की कल्पना। उनकी ध्वनि में आकर्षण था तो मानव जीवन का अमित सौन्दर्य भी तो था, जिसमें से नि:सृत होता था तपोनिष्ठ-जीवन का योगाभिवचन और झलकता था आत्मशान्ति का मधुर सन्देश।

23 तारीख को कलकत्ते के प्रतिष्ठित विद्वान् नागरिकों से स्वामी जी का वार्त्तालाप हुआ। तत्पश्चात् स्वामी जी ने 'ऑल इण्डिया रेडियो' कलकत्ते से अपने मधुर-वचनों को प्रसारित किया।

'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' के प्राणप्रतिष्ठाता श्री मदनमोहन मालवीय जी के सुपुत्र श्री मुकुन्द मालवीय जी ने 'श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' में महाराज के सन्देश की प्रत्युक्ति करते हुए कहा, 'श्री स्वामी जी तपोनिष्ठ, तत्त्वज्ञाता तथा योगसिद्ध महात्मा हैं, जिनकी योगमयी जीवनानुभूति विश्व के आत्मिक जीवन का अभ्युदय है, और है मानव-पतन के दृश्य का पट-परिवर्त्तन। आज का संसार महाराज के सदुपदेशों की आवश्यकता का अनुभव करता है। महाराज जी ने आध्यात्मिक-निर्माण का जो महान् नेतृत्व किया है, वह अलौकिक ही है।'

श्री स्वामी जी ने अपने सन्देश में कहा कि आज के संघर्षमय जीवन की अशान्ति की यदि निवृत्ति करनी है तो हम वैर और द्रोह-भावना से रहित होकर, मैत्री-भावना के सिद्धान्तों का पालन करें। शुद्धशीलता के प्रकाश में निर्भय होते हुए इन्द्रियजित्, सदाचारी, पवित्र-हृदय और सन्तुष्ट हो जावें, सच्चे ज्ञान की प्राप्ति करें। विश्वविद्यालयोपार्जित ज्ञान हमें लोक-व्यवहार का मार्ग ही दिखा सकेगा, परन्तु हृदय की विशालता के पवित्र प्रदेश में अनुभवगत-ज्ञान हमारे जीवन को उद्योगशील, प्रमाद-रहित और आत्मनिग्रही बनाते हुए, हमें आवागमन से मुक्त कर परमोपसम्पदा के आलोकित-साम्राज्य में प्रतिष्ठित कर सकेगा। यदि हम इसका व्यवहार करें तो नि:सन्देह हमें आनन्द और शान्ति प्राप्त होगी।

'श्री विशुद्धानन्द सरस्वती विद्यालय' से लौटने पर बंगाल के माननीय राज्यपाल श्रीयुत् कैलासनाथ काटजू का पत्र श्री स्वामी जी को प्राप्त हुआ। उसमें लिखा था–

गवर्नमेंट हाउस, कलकत्ता

23.9.1950

पूज्य मान्यवर स्वामी शिवानन्द जी महाराज के चरणों में मेरा प्रणाम स्वीकार हो।

आप यहाँ पधारे हैं, बड़े हर्ष की बात है। कलकत्ते निवासियों का भाग्य है कि आपके दर्शन हुए और आपके उपदेशों को सुनने का अवसर मिला।

मेरे ऊपर आपकी सदा कृपा बनी रहती है और जो पुस्तकें आप भेजते रहते हैं उनसे मैं सदा लाभ उठाता हूँ।

आपका प्रोग्राम यहाँ का भारी है और मुझे भी कुछ-न-कुछ करना पड़ता है, इस कारण सेवा में नहीं आ सका। कल तो मैं देखता हूँ कि आप दिन भर काम करते रहेंगे और मुझे भी सुबह और दिन को काम है। अवसर बना तो कभी आकर दर्शन करूँगा। मालूम नहीं कौन समय ठीक होगा। अगर नहीं आ सका तो आशीर्वाद की प्रार्थना करता हूँ।

सेवक

कैलासनाथ काटजू

बात सच ही थी कि स्वामी जी को विश्राम के लिए एक क्षण भी नहीं मिलता था। अहर्निश जन-समागम उनकी परिक्रमा करते रहता। समस्त पुरवासियों के हृदयों में भव्य-स्मृति अमरांकित करते हुए, स्वामी जी की पद-ध्वनि से धरा कांप-सी उठती थी और दिगन्त हिलने-से लगते थे। जहाँ भी वे जाते, वहीं जनसागर की तरंगें भूमण्डल-व्यापिनी अशान्ति के हृदय को छिन्नप्राय करती थीं। उस विशाल मानव सागर की तरंगाघातों से नभोमण्डल प्रतिशब्दित होता था, दिशाएँ प्रतिस्तम्भित होती थीं, चराचरावर्त्त-माया अस्तप्राय हो जाती थी।

24 सितम्बर। 'भारतीय तामिल संघ' के सन्निधान में अपार जन-समूह तरंगित हो रहा था। देदीप्यालोक की छटा में आवृत्त स्वामी जी का ईश्वरीय व्यक्तित्व पुरवासियों को अपनी ओर खींच रहा था। दाक्षिणात्य-जनता की भावुकता अपनी सीमा का उल्लंघन कर चुकी थी। उनके सम्मुख दिग्विजयी की प्रशस्त भालोल्लसित भव्य-पारमात्मिकता स्थिर थी। वह इन्द्रजाल था या सत्य, इसे संप्रेक्षक की दृष्टि ही निश्चित कर सकती है।

कलकत्तापुरस्थ 'दिव्य जीवन मण्डल' की सन्निधि में श्री स्वामी शिवानन्द जी ने जनता को दर्शन दिए और उनकी उत्कट-दर्शनाभिलाषा को शान्त किया।

इस प्रकार बंग भूमि में विजेता रामनाम की महिमा को प्रतिष्ठापित कर चुका था। श्री रामकृष्ण की मधुमयी लीला-भूमि आज परमात्मा के गुणगानों से पुन: पवित्रीकरण में दीक्षित हो चुकी थी। आज जगज्जननी संप्रफुल्लोल्लसित थी।

हमारे दिग्विजयी में अणुमात्र भी कर्तृत्व की अभिमानिता नहीं थी। क्या सरल हृदय थे स्वामी जी! प्रशान्तज्ञान के अविस्मरणीय निकेतन, वर्चस्व-तेज की अनिवर्चनीय ज्योति से भी परमोज्ज्वल, सौम्यातीत स्निग्ध-इन्दु-छटा से भी शीतल-हृदय स्वामी जी आदर-सम्मान में सभी को अपने से श्रेष्ठ समझते थे।

कलकत्ते छोड़ने के पहले वे पुरीमठ-प्रतिष्ठा श्रीपाद जगद्गुरु महाराज श्री शंकराचार्य के दर्शन हेतु गए। अनन्त श्री विभूषित शंकराचार्य के समक्ष दिग्विजयी ने, जिसकी विजय-वैजयन्ती विश्व पर लहरा रही थी, साष्टांग प्रणाम कर अपना अभिवादन सम्पन्न किया।

24 सितम्बर। सायंकाल की पुलकित-अरुणिमा के छायालोक में हावड़ा का विशाल स्टेशन शत-सहस्र नर-नारियों से आच्छन्न था। सब के मुखों से बारम्बार 'श्री स्वामी शिवानन्द जी की जय' का विजयनाद प्रतिनिनादित हो, असीम शून्यता में प्रशान्त हो रहा था। कलकत्ते के धनकुबेर थे तो साधारण जनता भी शरीर-से-शरीर मिलाकर खड़ी थी। अध्यात्मवाद ने साम्यवाद की पूर्ति की और उसे सफल बनाया। छोटे-बड़े के भेद-भावों को भुला कर, आबाल-वृद्ध, राजा-रंक, उज्ज-नीच साम्यवादिता पर परमात्मवाद की सुखमय-छाया व्याप्त थी।

7 बजने को थे। गाड़ी के द्वार पर विशाल-बाहु, प्रशस्तभाल और भव्य-मूर्ति स्वामी जी ने दिग्विजयी के सौम्य-स्वरूप में सबको प्रणाम किया। सहस्रश: कण्ठों ने विजयध्वनि से दिग्विजयी पताका को लहरायमान् किया। उनकी आँखों में आँसू थे तो हमारा हृदय भी पुलकित था। उनकी श्रद्धा ने हमारे हृदय पर विजय पायी तो सही, पर वे स्वयं पराजित सेना के समान गद्गद् हृदय हो, अपने विजयी महारथी को मंगल-शकुन अर्पण कर रहे थे। मर्मस्पर्शी सीटी देते हुए इंजिन में पुन: चेतना आई। हरी झण्डी दिखलाते हुए गार्ड ने सुना–

जनगणमन अधिनायक जय हे भारत भाग्य विधाता

किसी पागल गजराज की नाईं मद्रास मेल धरा को कम्पित करती, दिशाओं को हिलाती, वायु को बेधती, अकल्पनीय गति से दिग्विजयी पताका को चन्द्रस्नात-वातावरण में लहराती हुई, अन्धकार की निस्तब्धता को भंग कर, गन्तव्य स्थान की ओर दौड़ी जा रही थी। क्षण-क्षण में गाँव, नगर, जंगल, नदी, नाले विद्युच्छटावत् पार हो रहे थे। अबाध-गति से 'दिग्विजय मण्डल' बंग प्रदेश की विशालता को पार कर, आन्ध्र-प्रदेशीय सीमा की ओर संप्रविष्ट होने लगा।

समन्वित योग से स्वस्थ और सुंदर जीवन

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जीवन में हमारी मौलिक आवश्यकता क्या है? मन के विकास के लिये मानसिक संयम एवं शान्ति आवश्यक है और शरीर के विकास के लिये अन्न एवं प्राण, इन दो की आवश्यकता है। हम अन्न को ग्रहण करते हैं, अन्न से शरीर प्राण लेता है और प्राण स्फूर्ति, शक्ति तथा सामर्थ्य का रूप लेता है। आहार में संयम न रहे तो शरीर में रोग उत्पन्न होते हैं।

रोग के कारण

शरीर में रोग उत्पत्ति के तीन प्राथमिक कारण हैं–शारीरिक अव्यवस्था, आहार में अव्यवस्था और निद्रा में अव्यवस्था। शारीरिक अव्यवस्था का मतलब क्या है? जीवनशैली में शारीरिक गतिविधियों का अभाव। पता नहीं आजकल कितने लोग प्रात:काल उठकर टहलने के लिये जाते हैं, व्यायाम करने के लिये जाते हैं, आसन वगैरह करते हैं। लेकिन अगर हम अपने समाज को देखेंगे तो ऐसी बहुत-सी प्रथायें पाएँगें जो संकेत करती हैं कि यहाँ के लोगों का जीवन किस प्रकार का था। यहाँ के लोग प्राकृतिक जीवन जीते थे जिससे उनका शरीर हमेशा स्वस्थ रहता था। अगर सुबह उठकर शौच के लिए भी जाना होता था तो लोटा लेकर बाहर जाते थे। दिनभर परिश्रम करते थे और मस्त होकर खाते भी थे। हमारे पूर्वज तो घी का लोटा पी लेते थे, पर आज हम लोग एक चम्मच घी खाते हैं तो कौलेस्ट्रोल बढ़ जाता है। हमारे पूर्वज एक-एक लोटा घी पीकर भी स्वस्थ जीवन बिताते थे क्योंकि उनकी जीवनशैली प्राकृतिक थी।

आज भारतीय लोग टहलने या दौड़ने जैसी शारीरिक गतिविधियाँ बहुत कम करते हैं। हम लोग अप्राकृतिक जीवनशैली अपना रहे हैं। सोने और उठने का कोई निश्चित समय नहीं है, न ही खाने का कोई निर्धारित समय है। आधी रात को भी खाते हैं, सबेरे भी खाते हैं। स्वास्थ्य के दृष्टिकोण से शरीर में कोई संयम नहीं है। फ्रिज भरा रहता है, जब भूख लगे खोलकर कुछ खा लेते हो। शरीर के लिये जो संयम आवश्यक है वह नहीं रहता है और यह संयम रहित जीवनशैली शारीरिक अस्वस्थता का कारण बनती है।

शारीरिक अस्वस्थता का दूसरा कारण है आहार, क्योंकि वर्तमान समय में आहार का सम्बन्ध स्वास्थ्य से नहीं, स्वाद से है। पूर्व काल में लोग आहार को स्वाद से नहीं, स्वास्थ्य से जोड़ते थे, और आयुर्वेद का सिद्धान्त उसी से प्रकट हुआ है। लेकिन जिस देश ने आयुर्वेद के सिद्धान्त को जीवन की एक व्यवस्था के रूप में

विश्व को शिक्षा दी है, आज उस देश के लोग अपनी ही चीज को भूलकर अपने जीवन को विकृत बनाने में लगे हुए हैं। आहार का भी एक नियम होता है और उसके उल्लंघन से भी अस्वस्थता होती है। अनुचित आहार के कारण जब हमारे शरीर में प्राण की कमी हो जाती है तब शरीर निर्बल हो जाता है।

हठयोग

शारीरिक निर्बलता को दूर करने के लिये योगियों ने एक योग को सामने रखा और वह है हठयोग। हठयोग में पाँच चरण हैं। पहला चरण है शरीर को उन विकारों से मुक्त करना जो अव्यवस्थित जीवनशैली के कारण शरीर में उत्पन्न होते हैं। इन विकारों से मुक्ति के लिये शुद्धिकरण की विशेष प्रक्रियाओं द्वारा शरीर की सफाई की जाती है। इन प्रक्रियाओं को हम षट्कर्म कहते हैं। इसके अलावा आसन, प्राणायाम, मुद्रा और बन्ध–ये भी हठयोग के अंग हैं। जब हठयोग को हम सिद्ध कर लेते हैं तब शरीर में प्राणों का संचार सुचारू रूप से होता है, रोग दूर होते हैं, स्वास्थ्य की प्राप्ति होती है।

राजयोग

शरीर की तरह ही मन की भी आवश्यकताएँ होती हैं। ये आवश्यकताएँ क्या हैं? संयम और शान्ति। मन में संयम और शान्ति लाने के लिये, मन को व्यवस्थित करने के लिये योगियों ने एक दूसरे योग को सामने रखा और वह है राजयोग। मन में एक क्षमता है जो मनुष्य को एक विशेष केंद्रबिंदु से जोड़ती है, जिसे आप अन्तरात्मा कहते हो। लेकिन जब तक मन उस ओर आकर्षित नहीं होता तब तक वह आपको संसार से ही बाँधकर रखेगा। जब तक मन आपको संसार से बाँधे रहता है तब तक मन में अनेक प्रकार के विकार उत्पन्न होते रहते हैं, जिन्हें वृत्ति कहते हैं।

दो शब्द आते हैं, आकार और विकार। अगर टूटे हुए आईने में आप अपना चेहरा देखते हो तो चेहरा विकृत दिखलाई देता है। यह विकार है। अगर आईना टूटा नहीं है, बिल्कुल समतल है तो उसमें आप अपने सही आकार को देख सकते हो। जब हमारा मन विकारों से ग्रसित है तब वह हमेशा अपना रूप बदलते रहता है। आज यह चाहता है, कल कुछ और चाहता है, परसों कुछ और चाहता है। आज इसकी कामना है, कल उसकी कामना है। आज यह अभाव है, कल वह अभाव है। मन तो हमेशा अपने रूप को बदलते रहता है। जिस मन का आप अनुभव करते हो, वह विकृत मन है। मतलब उसमें विकार है, आकार नहीं। इसी विकार को वृत्ति कहते हैं।

राजयोग में कहा जाता है– *योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः*। मन में उत्पन्न हो रहे विकारों और वृत्तियों का निरोध करना ही योग है। निरोध का मतलब विरोध या अवरोध नहीं, एकाग्रता होता है। अवरोध का तो अर्थ होता है रोक देना, लेकिन निरोध का मतलब होता है मानसिक व्यवहार को होने देना, केवल तनाव के स्तर तक नहीं पहुँचने देना। जो भी चीजें मन में आ रही हैं, जो भी भावनायें उत्पन्न हो रही हैं, जो भी विकार मन में उत्पन्न हो रहे हैं, जो भी इच्छायें, महत्त्वाकांक्षायें या वासनायें मन में उत्पन्न हो रही हैं, उन सबको तुम देखते जाओ, रोकने का प्रयास मत करो, लेकिन उनके नकारात्मक प्रभाव से अपने आपको मुक्त रखो।

राजयोग में सबसे पहले आते हैं, यम तथा नियम, फिर आसन और प्राणायाम, फिर प्रत्याहार और धारणा और अंत में ध्यान और समाधि। यम और नियम व्यक्ति के व्यवहार एवं संबंधों को व्यवस्थित करते हैं, संशोधित करते हैं, सामंजस्यपूर्ण बनाते हैं। व्यवहार में जो नकारात्मक वृत्तियाँ हैं उनको शान्त करते हैं। ये नकारात्मक वृत्तियाँ क्या हैं? हिंसा मनुष्य व्यवहार का एक नकारात्मक गुण है। असत्य बोलना व्यवहार का एक नकारात्मक गुण है। ये मैं उदाहरण के तौर पर बतला रहा हूँ। यम-नियम में क्या आता है? सत्य आ जाता है, अहिंसा आ जाती है। जहाँ तक हो सके अपने जीवन में सत्य का आचरण करो। जहाँ तक हो सके हिंसा की उस अभिव्यक्ति के प्रति सजग हो जाओ जो तुम्हारे जीवन में प्रकट हो रही है ताकि अहिंसा को समझ पाओ। इस प्रकार यम तथा नियम के द्वारा हम अपने व्यवहार के विकारों को ठीक करते हैं। उसके बाद आसन-प्राणायाम के द्वारा अपने शरीर और इन्द्रियों में स्थिरता लाते हैं।

राजयोग का आसन और प्राणायाम हठयोग जैसा नहीं है। राजयोग में कहा गया है– *स्थिरसुखमासनम्।* आसन का मतलब होता है एक शारीरिक स्थिति में स्थिर हो जाना। आसन में स्थिरता और सुख का अनुभव होना चाहिये। वह स्थिरता एक-आध मिनट के लिये नहीं, बल्कि एक-आध घंटे तक होनी चाहिए। जब तक तुम ध्यान की अवस्था में हो तब तक के लिए सुखपूर्वक स्थिरता होनी चाहिए, क्योंकि राजयोग का सम्बन्ध मन के साथ है।

राजयोग में प्राणायाम का अभ्यास प्राणों की चंचलता को समाप्त करके प्राणों में स्थिरता को लाने के लिये किया जाता है। इसीलिये महर्षि पतंजलि ने प्राणायाम के बारे में अधिक नहीं कहा है, केवल तीन प्रकार के प्राणायामों की चर्चा की है—श्वास अन्दर लेना, श्वास बाहर छोड़ना और श्वास रोकना। महर्षि पतंजलि ने ऐसा अभ्यास नहीं बतलाया है कि एक नासिका बन्द कर लो, दूसरे को खोलो, इधर से लो, उधर से छोड़ दो। ये सब हठयोग में आते हैं, लेकिन राजयोग में प्राणायाम केवल स्थिरता के लिये किया जाता है।

प्रत्याहार तथा धारणा, राजयोग के पाँचवे और छठे अंग हैं जिनमें चेतन, अवचेतन तथा अचेतन मन की अभिव्यक्तियों को संशोधित और व्यवस्थित किया जाता है। महत्त्वाकांक्षाएँ, इच्छाएँ, वासनाएँ तथा भोग की वृत्तियाँ मनुष्य को अशान्त कर देती हैं, चंचल बना देती हैं। इन सबके प्रति तथा अन्य मानसिक व्यवहारों के प्रति द्रष्टा बनकर, मानसिक चंचलता को समाप्त करके फिर धारणा में अपने मन को एक बिंदु में एकाग्र किया जाता है। मन को एक अनुभव में स्थिर करने के बाद ध्यान की शुरुआत होती है। यह है राजयोग जिससे मानसिक संयम और शान्ति की प्राप्ति होती है।

क्रियायोग

हमारे गुरुजी कहते थे कि राजयोग के बाद जो तीसरा योग सिद्ध करना होता है वह है क्रियायोग। हठयोग हुआ शरीर के लिये, राजयोग हुआ मन के लिये और क्रियायोग है अपनी आध्यात्मिक चेतना की जागृति के लिये। क्रियायोग सम्पूर्ण योगों का निचोड़ है। यही योग का क्रम है जिसे हमारे गुरुजी ने प्रचलित किया है। हम केवल हठयोग या केवल राजयोग नहीं सिखाते, बल्कि हम तीनों योगों को समन्वित करते हैं और फिर इस समग्र योग को सिखलाते हैं। ये तीन योग मिलकर हमारी परम्परा में सम्पूर्ण योग कहलाते हैं।

अंतरंग योग

अभी जिनकी चर्चा की वे सभी बहिरंग योग हैं, जो साधना के बल पर आपको तैयार करते हैं, आपके जीवन में संयम लाते हैं, आपके जीवन को व्यवस्थित करते हैं। साधना के पश्चात् आता है व्यवहार मतलब साधना से प्राप्त अनुभवों की अभिव्यक्ति। व्यवहार या अभिव्यक्ति से संबंधित योग हैं कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग।

कर्म हर व्यक्ति करता है और कर्म व्यक्ति को बन्धन में बाँधते हैं। लेकिन जब कर्म में योग शब्द को जोड़ दिया जाता है और व्यक्ति कर्मयोग का अभ्यास करता है, तब फिर कर्म बन्धन का नहीं, मुक्ति का कारण बनता है।

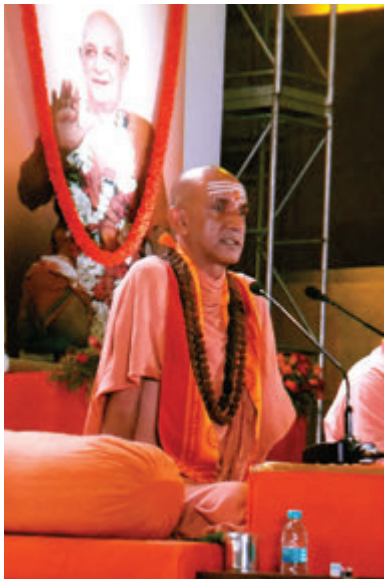

ज्ञानयोग केवल यह प्रश्न करना नहीं है कि 'मैं कौन हूँ?' बल्कि ज्ञानयोग एक समझ है कि हम अपने परिवार में, अपने समाज में किस प्रकार बुद्धिमानी के साथ अपना जीवन व्यतीत करके शान्ति प्राप्त कर सकते हैं, उत्तमता को प्राप्त कर सकते हैं। ये ज्ञानयोग के विषय हैं। मैं कौन हूँ, मैं शरीर नहीं आत्मा हूँ—ये सब तो दर्शन के विषय हैं। दर्शन ज्ञान नहीं होता, ज्ञान का स्वरूप हमेशा व्यावहारिक होता है। दर्शन सिद्धान्त है लेकिन ज्ञान आपकी अपनी समझ है, आपकी अपनी बुद्धि की अभिव्यक्ति है। अपनी समझ के अनुसार हम संसार में किस प्रकार उत्तम से उत्तम कर्म कर सकते हैं और सभी का कल्याण कर सकते हैं, ऐसा ज्ञानयोग का चिन्तन है क्योंकि इसका सम्बन्ध व्यक्तिगत समझ के साथ है।

भक्तियोग जीवन का अन्तिम योग है। भक्ति का एक मतलब ईश्वर-आराधना है, हम मानते हैं इस बात को। लेकिन भक्ति वास्तव में आपकी भावनाओं को दिशान्तरित करने का तरीका है। जब आपकी भावना संसार की ओर प्रवाहित न होकर अन्तरात्मा की ओर प्रवाहित होने लगती है, तब उसे कहते हैं भक्ति की अवस्था। यहाँ पर भावना को समझना आवश्यक है। भावना एक ऊर्जा है, जब प्रेम की भावना प्रकट होती है तो लोग उसमें बह जाते हैं। जब क्रोध की भावना प्रकट होती है तब लोग उससे प्रभावित हो जाते हैं। जब लोभ की भावना प्रकट होती है तब लोभ से ग्रसित हो जाते हैं। जब ईर्ष्या की भावना प्रकट होती है तब लोग उसकी चपेट में आ जाते हैं। जब करुणा की भावना प्रकट होती है तब लोगों को सुख मिलता है। मतलब भावना ऊर्जा की एक अभिव्यक्ति है। जब यही अभिव्यक्ति संसार की ओर होती है, तब ईर्ष्या, द्वेष, घृणा, लोभ, मद, मात्सर्य आदि का अनुभव होता है, और जब इसी भावना को हम संसार के बजाय अपनी अन्तरात्मा की ओर प्रवाहित करते हैं, आत्मशोध के लिये तत्पर होते हैं, तब उसका रूप हो जाता है भक्ति का। इस प्रकार, कर्मयोग, ज्ञानयोग और भक्तियोग ऐसे व्यावहारिक योग हैं जो मनुष्य के जीवन को परिवर्तित कर देते हैं। और इन तीनों को बल और आधार मिलता है हठयोग, राजयोग तथा क्रियायोग से।

—25 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

कलकत्ता विश्वविद्यालय के नाम संदेश

स्वामी शिवानन्द सरस्वती

स्वामी शिवानन्द जी 22 सितंबर 1950 की सुबह कलकत्ते पहुँचे और वहाँ तीन दिन ठहरे। पहले दिन संध्या के समय वे कलकत्ता विश्वविद्यालय गए, जहाँ के आशुतोष हॉल में वहाँ के प्रधानाचार्य और अन्य प्राचार्यों ने उनका स्वागत किया। सभा की शुरुआत सामूहिक प्रार्थना से हुई। फिर अंग्रेजी विभाग के विभागाध्यक्ष, श्री भट्टाचार्य ने स्वामीजी का परिचय दिया, जिसके बाद स्वामीजी ने उपस्थित छात्रों को संबोधित किया।

अमृतपुत्रों! आओ सबसे पहले ॐ का उच्चारण करें। मेरे साथ ऊँचे स्वर में कहो– ॐ ॐ ॐ।

सबसे पहले शब्द की उत्पत्ति हुई। इसे शब्द ब्रह्म भी कहा जाता है। यह ईश्वर से भिन्न नहीं। यह शब्द वस्तुत: ॐ ही है। इसमें अपार शक्ति है। यही तुम्हारी असली पहचान है। इसलिए आओ, हम सब भाव के साथ ॐ का उच्चारण करें। (अब की बार सभी छात्रों ने ॐ के उच्चारण में भाग लिया)

और जोर से! दिल खोलकर ॐ कहो। आओ, हम बारंबार ॐ का उच्चारण करें और अपने आप को शक्ति, भक्ति और ज्ञान से परिपूर्ण कर दें। अभी भी तुममें थोड़ी हिचकिचाहट और लज्जा है। लज्जा लौकिक और आध्यात्मिक विकास में बाधक है। भगवान का नाम लेने में कैसी लज्जा? नाम तुम्हें मनोवांछित फल देगा। ॐ का जप और उसके अर्थ पर ध्यान करने से हम परमधाम तक सुगमता से पहुँच सकते हैं। आओ, एक बार फिर अपने असली नाम को दोहराएँ– ॐ ॐ ॐ! (इस बार श्रोताओं की प्रतिक्रिया आश्चर्यजनक थी)

मुझे श्री आशुतोष मुखर्जी की याद आती है, जिनके नाम पर यह सभागृह बनाया गया है। *मातृदेवो भव*–उपनिषद् के इस सूत्र पर उनका पूर्ण विश्वास था और अपनी माता की पूजा किये बिना, उनका चरणामृत लिये बिना वे कभी विश्वविद्यालय नहीं जाते थे। उन्होंने ऋषियों की सच्ची शिक्षा को आत्मसात् किया था। तुम भी उपनिषदों की शिक्षाओं को, उपनिषदों के भाव को आत्मसात् करो। तब तुम्हारा हृदय शुद्ध होगा, मन की सारी बुरी वृत्तियाँ समाप्त होंगी और तुम्हें आत्मज्ञान की प्राप्ति होगी।

सत्यं वद, धर्मं चर, मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव, अतिथिदेवो भव। सदा सत्य बोलो। तुम्हारे विचार, वाणी और कर्म एकरूप हों। आजकल लोग सोचते कुछ हैं, बोलते कुछ और हैं और करते कुछ और हैं। इसलिये वे मानसिक शांति के आनंद से वंचित रहते हैं। अपने कर्तव्यों का पालन करो। अपने माता-

पिता, आचार्य और अतिथि में भगवान का दर्शन करो। प्राचीन कालीन गुरुकुलों में ऋषि-मुनि अपने शिष्यों को यही दीक्षान्त संदेश देकर भेजा करते थे।

सर्वोच्च विद्या

आत्मा मन और इन्द्रियों की पहुँच से परे है। मन और इन्द्रियाँ सीमित और नश्वर साधन हैं। आँखें बाकी सारी चीजें तो देख सकती हैं पर पलकें नहीं देख सकतीं। इस सीमित आँख से अनंत को नहीं देखा जा सकता। यही बात दूसरी ज्ञानेन्द्रियों पर भी लागू होती है। लेकिन आत्मा के अस्तित्व का अनुमान कुछ अनुभवसिद्ध तथ्यों से लगाया जा सकता है। तुम अपने अस्तित्व को नहीं नकार सकते। तुम हमेशा 'अहं अस्मि' अर्थात् 'मैं हूँ' के भाव का अनुभव करते हो। यह इस तथ्य की ओर संकेत करता है कि आत्मा शाश्वत है, वही मन और इन्द्रियों का मूल आधार है। आत्मविद्या या ब्रह्मविद्या का यह सर्वोच्च ज्ञान हृदय की शुद्धि से ही प्राप्त होता है।

अपने आपको साधन-चतुष्टय से युक्त करो। तुम्हारे अन्दर विवेक जनित शक्ति होनी चाहिये। यही तुम्हें धीर बनायेगी। अगर तुम्हारे अन्दर विवेक है तो वैराग्य अपने आप आ जाएगा। लोग बैंक में जमा राशि पर निर्भर करते हैं, पर जब घर-परिवार में कोई भारी विपदा आती है तो उसे झेल नहीं पाते। उनका मन संतुलित और शांत नहीं रह पाता। जिसने ब्रह्मविद्या की परमविद्या सीख ली है, वही सचमुच शांत रह सकता है। तुमने शरीरविज्ञान, मनोविज्ञान, जीवविज्ञान, रसायनविज्ञान जैसे कितने ही विज्ञान पढ़े हैं, पर तुमने कभी ब्रह्मविद्या नहीं पढ़ी। यही विद्या तुम्हें सच्चा वीर बना सकती है।

ईश्वर का दुर्लभतम उपहार

तुम सब अमरता, आनंद, प्रकाश, शक्ति और ज्ञान के उत्तराधिकारी हो। तुम्हारा वास्तविक स्वरूप ज्ञान और आनंद का है। मैं तुम्हें इसी स्वरूप का स्मरण कराने आया हूँ। विधाता ने बुद्धि, विवेक और संकल्प शक्ति से युक्त यह मानव शरीर देकर तुम्हें सबसे कीमती उपहार दिया है। इस दुर्लभ मानव जन्म को सही तरीके से जीयो। सिर्फ मोटर-कार, बंगला, रेशमी कपड़े, रेडियो, घड़ी और सोने-चाँदी के गहनों जैसी नश्वर वस्तुयें जमा करने के लिये जीना एक तुच्छ, बचकाना आदर्श है। ये सभी चीजें स्वप्नवत् विलीन हो जाती हैं। इस संसार की हरेक वस्तु का अंत अवश्यम्भावी है। सामान्य समझ वाला व्यक्ति भी ऐसी चीजें पसंद करता है जो ज्यादा चलें। तुमने दुकानों पर यह सवाल किया या सुना ही होगा, 'यह चीज जर्मनी में बनी है या जापान में?' हरेक व्यक्ति ज्यादा टिकाऊ चीज खरीदना चाहता है। फिर इसी सिद्धांत को अपने जीवन पर लागू क्यों नहीं करते?

भाग्यवान् युवाओं! अपने जीवन को शाश्वत सत्यों और आदर्शों के लिये समर्पित कर दो। इस धरती पर कुछ बनना ही जीवन का एकमात्र उद्देश्य नहीं। जब तक तुम जीवित हो तब तक किसी प्रकार की गतिविधि में तो संलग्न रहना ही पड़ेगा, पर इन सबके पीछे दिव्यता और पूर्णता के महान् आदर्श को पाने का सतत् प्रयास होना चाहिए। तुम्हारा जन्म पूर्णता पाने के लिये हुआ है, दुर्बलताओं, विकारों और बन्धनों से घिरा अधमरा जीवन जीने के लिये नहीं। पूर्णता सदाचार की अनवरत साधना से शुद्धि चरित्र अर्जित करके धीरे-धीरे आती है। सदाचार और सच्चरित्र ही मनुष्य की असली पहचान है। बुरे चरित्र वाला मनुष्य तो पशुओं से भी निकृष्ट है, क्योंकि चरित्र ही मनुष्य को पशु योनि से ऊपर उठाता है। मनुष्य शरीर मिल जाने से ही कोई सच्चा मनुष्य नहीं बन जाता। सच्ची मानवता तो शुद्धता, नैतिकता और शूरता से आती है। ये सद्गुण तुम्हारी दिव्य प्रकृति को दर्शाते हैं। तुम इन सद्गुणों को अभिव्यक्त करने का जितना अधिक प्रयास करोगे, उतने ही अपने दिव्य स्वरूप के प्रति सजग बनोगे। शुचिता, सत्य, निःस्वार्थता,

प्रेम, उदारता, क्षमा, शांति और सरलता जैसे गुणों को पाना इतना आसान नहीं है, लेकिन अगर तुम अपनी इन्द्रियों के गुलाम रहने की बजाय सच्चे मानव बनने की ठान लो, तो ये गुण शीघ्र ही तुम्हारे पास चले आयेंगे।

अपना आदर्श जीओ

इंद्रिय-संयम की कला सीखने के लिये प्रारंभ में कुछ समय कठिन संघर्ष करना पड़ेगा। काम, क्रोध, मद, लोभ, मोह, मात्सर्य और हर प्रकार की वासना पर तुम्हारा पूर्ण संयम होना चाहिये। मन को नियंत्रित करने का यही रहस्य है कि उसके सामने एक ज्वलन्त आदर्श प्रस्तुत किया जाए। अपनी धन्य मातृभूमि के महापुरुषों और महात्माओं के जीवन के बारे में रोज पढ़ो। उनका आदर्श जीवन तुम्हें रास्ता दिखायेगा। अपने मन को शुद्ध, उदात्त विचारों से भर दो ताकि इसे ओछे विचारों से घृणा हो जाए। विषय-वस्तुओं के दोषों पर चिंतन करो। ये तुम्हें धोखा देते हैं। जब मृत्यु का क्षण निकट आता है तो ये तुम्हारी कोई मदद नहीं करते। सच्चा वैराग्य विकसित करो। अगर तुमने मानवीय दु:ख-दर्दों के विस्तार को थोड़ा भी समझ लिया है तो तुम विषयी जीवन की ओर कभी नहीं भागोगे। जिस अंतरात्मा के बिना तुम एक क्षण के लिये भी जीवित नहीं रह सकते, उसपर संपूर्ण विश्वास और श्रद्धा रखो।

भगवन्नाम की रहस्यमयी शक्ति को शब्दों से बयान नहीं किया जा सकता। तुम्हें स्वयं प्रयास करके इसका अनुभव करना है। अपने जीवन के आदर्श को पहचान लेने के बाद उसे प्राप्त करने की योजना बनाओ। उस आदर्श तक पहुँचने के लिये अपने जीवन को तदनुरूप ढालो। लक्ष्यहीन, दिशाविहीन जीवन मत जीओ। ब्रह्मचर्य का पालन करो। जीवन के संघर्षों से जूझने और महान् उपलब्धियों को पाने के लिए तुम्हारी जीवनी-शक्ति ही सबसे बड़ी धरोहर है। इस शक्ति के दुरुपयोग या बर्बादी का अर्थ है आजीवन अवसाद। हर चीज में संयम बरतो, चाहे वह खाना-पीना, बातचीत करना, घुलना-मिलना या सोना हो। अति हमेशा हानिकारक होती है। अपनी दिनचर्या में थोड़ा-थोड़ा जप, ध्यान, आत्म-विश्लेषण, आत्म-सुधार और आसन-प्राणायाम एवं सूर्य नमस्कार जैसा नियमित व्यायाम जोड़ो। तभी तुम अपने व्यक्तित्व के सभी पहलुओं को सुंदरता से विकसित कर पाओगे। तुम एक सच्चे, संपूर्ण योगी बनोगे। तुम्हारी बुद्धि, भावना और कर्म में समरसता आ जाएगी। लोग तुम्हें आश्चर्य से देखेंगे। जप, ध्यान, स्वाध्याय और आराधना तुम्हें एक अलग प्रकार की आंतरिक शक्ति से भर देंगे, जिससे तुम सारी चिंताओं को हँसकर भुला दोगे। तुम्हारे संतुलन और समभाव को कुछ भी हिला नहीं पायेगा। तुम हमेशा शांति और आनंद में स्थित रहोगे और दूसरों को भी यह आनंद बाँटोगे। स्वयं पर भरोसा रखो। तुम्हारा जन्म संसार के नश्वर खिलौनों और तमाशों के पीछे भागने के लिये नहीं, बल्कि एक महान् उद्देश्य के लिये हुआ है।

देर मत करो

अपने स्वार्थ का पूरी तरह त्याग कर दो और सच्चे दिल से सबकी सेवा करो। कायरता, लज्जा और दुर्बलता का त्याग कर पूर्णता के उच्च आदर्श की ओर साहस के साथ आगे बढ़ो। नि:स्वार्थता ही सबसे बड़ा शुद्धिकारक है। साहस तुम्हारा सच्चा मित्र है। आलोचना से घबराओ मत। जब तुम उच्च चरित्र प्राप्त कर लोगे तो तुम्हारे आलोचक तुम्हारे चरणों पर लोटेंगे। याद रखो कि स्वयं को पूर्णता, प्रकाश, शक्ति और आनंद के रूप में पहचानना ही तुम्हारा मुख्य कर्तव्य है। इस कर्तव्य का पालन करने में देर मत करो। मेरे मित्रों! तुम्हारा कॉलेज-जीवन इस लक्ष्य को पाने के लिए सबसे बढ़िया प्रशिक्षण-स्थल है। यहाँ तुम्हें आत्म-नियंत्रण, पवित्रता, आज्ञाकारिता, विनम्रता, उदारता, क्षमा, दया, मैत्री, अच्छाई, सहयोगिता, परिश्रम, नियमितता और सत्य जैसे सद्गुण विकसित करने हैं। अपने कॉलेज के दिनों का पूरा फायदा उठाओ ताकि जब तुम यहाँ से बाहर निकलो तो एक आदर्श, तेजस्वी पुरुष की तरह निकलो।

एक क्षण के लिये भी मत भूलो कि तुम्हारे जीवन की सारी गतिविधियों का लक्ष्य पूर्णता और दिव्यता को प्राप्त करना है। तुम्हें यह जानना है कि तुम शरीर और मन से परे; रोग, क्षय और मृत्यु से परे अनश्वर आत्मा हो। तुम धरती पर अवतरित साक्षात् दिव्यता हो। इसे महसूस करो, इसे अपने हर क्रियाकलाप में अभिव्यक्त करो। तुम धन्य हो जाओगे, साथ ही दूसरों को भी धन्य करोगे। मेरे प्रिय युवाओं! इसी क्षण से अपने लक्ष्य की ओर तत्पर हो जाओ। भगवान तुम सब पर ज्ञान और अमरता की वर्षा करें।

अभी से सबेरे थोड़ा जप करो, गीता के एक अध्याय का अध्ययन करो। ईश्वर के हर नाम में अनंत शक्ति छिपी है। तुकाराम तो अनपढ़ थे, पर भगवन्नाम के बल पर उन्होंने ऐसे प्रेरणादायी अभंग लिखे जो आज बंबई विश्वविद्यालय के स्नातकोत्तर पाठ्यक्रम में शामिल किए जा चुके हैं। रामकृष्ण परमहंस कभी विदेशी विश्वविद्यालयों में नहीं गये, न कभी एम.ए. या पी.एच.डी. के लिए पढ़े। वे सीधे दिव्यता के स्रोत से जुड़े और फिर तो वे विद्वानों और पंडितों के गूढ़तम प्रश्न भी सुलझाने लगे।

अंत में मैं तुम्हें उपनिषद् के सार का स्मरण कराना चाहूँगा। *तत् त्वम् असि*–इस सूत्र पर ध्यान कर परमसत्ता की अनुभूति करो। अथवा 'न मैं यह शरीर हूँ, न मैं यह मन हूँ, मैं तो अनश्वर आत्मा हूँ' इस सूत्र पर मनन करो। तुम कैवल्य मोक्ष प्राप्त कर लोगे।

भगवान तुम सब को आरोग्य, दीर्घायु, शांति, समृद्धि और शाश्वत आनंद प्रदान करें। तुम सब आदर्श नागरिक और धीर साधक बनो। इस जन्म में ही तुम सब जीवनमुक्त बन जाओ!

बिहार योग परम्परा का योगदान

स्वामी निरंजनानंद सरस्वती

हमारी योग परम्परा की शुरुआत लगभग अस्सी साल पहले होती है। हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी हैं जिनका ऋषिकेश में दिव्य जीवन संघ नाम का आश्रम है। वे पिछली शताब्दी के एक महान् संत के रूप में जाने जाते हैं। उन्होंने अपने शिष्यों को योग-शिक्षण के कार्य की जो प्रेरणा दी, उसके पीछे एक कारण था। जहाँ तक संन्यासियों का सवाल है, उनका अपने व्यक्तिगत जीवन में जो दर्शन और सिद्धान्त रहता है वह है वेदान्त, और यह संन्यासियों के जीवन की दिशा को निश्चित करता है। लेकिन स्वामी शिवानन्द जी का मत था कि दर्शन मनुष्य के व्यक्तिगत जीवन का अंग है, और मनुष्य के जीवन में जो व्यवहार होना चाहिये वह समाज और परिवार के अनुकूल होना चाहिये। जब हमारा जीवन समाज और परिवार के अनुकूल हो और उसके साथ-ही-साथ जीवन में आध्यात्मिक चेतना की जागृति हो तब मनुष्य का जीवन उत्तम बनता है। वे यह भी कहते थे कि योग जीवन में अनुशासन लाता है। इसलिये संन्यासियों को अपने व्यक्तिगत जीवन में वेदान्त दर्शन का अनुसरण अवश्य करना चाहिए, लेकिन साथ ही अपने शरीर, मन और भावनाओं को शुद्ध करने के लिये और इनकी प्रतिभाओं को जागृत करने के लिये योग की सहायता लेना आवश्यक है।

योग की आवश्यकता

योग केवल संन्यासियों के लिये नहीं, समाज के लिये भी आवश्यक है, क्योंकि योगाभ्यास द्वारा हम अपनी प्रतिभाओं को जागृत कर पाते हैं। व्यक्ति की प्रतिभाओं को विकसित करने के लिए ही स्वामी शिवानन्द जी ने योग को एक सशक्त साधन के रूप में प्रस्तुत किया है। वे एक चिकित्सक थे, वैज्ञानिक थे। उन्हें शरीर का ज्ञान था, मन का ज्ञान था और जब वे साधु बने तब उन्हें अध्यात्म का भी ज्ञान हुआ।

स्वामी शिवानन्द जी का मानना था कि मनुष्य आत्मसाक्षात्कार के लिये प्रयास अवश्य करता है और समाज में साधु लोग कहते भी हैं कि जीवन का उद्देश्य आत्मसाक्षात्कार अथवा भगवद्-दर्शन है, किन्तु यह हमारे जीवन की आवश्यकता नहीं है। वे एक दृष्टांत देते थे कि एक अंधे व्यक्ति के मन में इच्छा उत्पन्न हो सकती है कि वह सूर्य को देखे, लेकिन सूर्य को देखना उसकी आवश्यकता नहीं है, मात्र इच्छा है। उस अंधे व्यक्ति की आवश्यकता है दृष्टि को प्राप्त करना। जब वह अंधा व्यक्ति दृष्टि को प्राप्त कर लेता है तो वह केवल सूर्य को ही नहीं, पूरी सृष्टि को देखने में सक्षम हो सकता है। इसी सिद्धान्त को स्वामी शिवानन्द जी ने

हम लोगों के साथ जोड़ा है। ऋषि-मुनि और साधु-महात्मा तो कहते हैं कि जीवन का लक्ष्य ईश्वर-दर्शन है, लेकिन हमारी आवश्यकता ईश्वर-दर्शन नहीं है। हमारी आवश्यकता है अपने जीवन को सम्भालकर, अपनी प्रतिभाओं को व्यक्त करते हुए जीवन में सुख, शान्ति और समृद्धि को प्राप्त करना। जब जीवन में सुख-शान्ति आती है और अभाव समाप्त हो जाते हैं तब मनुष्य का मन शान्त होकर दूसरी यात्रा पर अग्रसर हो सकता है।

अगर किसी को दमा का रोग है और हम उससे कहें, तुम सोचो कि तुम शरीर नहीं हो, मात्र आत्मा हो, तो क्या वह हमारी बात को स्वीकार करेगा? कभी नहीं करेगा। जिस व्यक्ति को दमा है, उसे दर्शन की शिक्षा नहीं, बल्कि एक व्यावहारिक पद्धति की शिक्षा देनी है जिसके द्वारा वह स्वयं को स्वस्थ अनुभव कर पाए। एक बार मनुष्य स्वस्थ हो जाता है तब वह किसी भी यात्रा पर जाने के लिये सक्षम होता है।

योग मनुष्य के शारीरिक, मानसिक एवं भावनात्मक स्वास्थ्य के लिये तथा आध्यात्मिक चेतना की जागृति के लिये आवश्यक है। स्वामी शिवानन्द जी कहते थे कि प्रत्येक मनुष्य के व्यक्तित्व का निर्माण उसकी बौद्धिक क्षमता, भावनात्मक संवेदनशीलता और रचनात्मक कार्य की अभिव्यक्ति के समन्वय से होता है। आप भी अगर अपने जीवन का विश्लेषण करेंगे तो पाएँगे कि जो अवरोध आपके जीवन में आते हैं, उनके तीन ही स्रोत होते हैं—बुद्धि, भावना या कर्म। यदि बौद्धिक विश्लेषण या मानसिक स्पष्टता का अभाव रहे तो जीवन में किसी भी कार्य को सम्पादित करते समय मन में हमेशा भ्रान्ति, संघर्ष और दु:ख की उत्पत्ति होती है। अगर भावनात्मक संतुलन न रहे तो बाहर की परिस्थितियों से हम तत्काल प्रभावित

हो जाते हैं। क्रोध, भय, निराशा, ईर्ष्या, घृणा, द्वेष, प्रतिस्पर्धा—इन्हीं सब चीजों में हम चक्कर काटते रहते हैं, जो हमारे जीवन में अशान्ति उत्पन्न करते हैं। जब बुद्धि और भावना में संतुलन एवं स्पष्टता नहीं तब कार्य क्षमता और कार्य कौशलता भी प्रभावित होती है। जीवन में अगर उन्नति के पथ पर चलना है तब फिर इन तीन अवस्थाओं में संतुलन और सामंजस्य की स्थापना हमें करनी है। यही स्वामी शिवानन्द जी के योग का आधार है। उनके योग का आधार मोक्ष या समाधि नहीं, बल्कि उनके योग का आधार है जीवन में प्रतिभाओं की जागृति। उनके शिष्यों ने भी योग को इसी दृष्टिकोण से विकसित किया।

बिहार योग परम्परा

स्वामी शिवानन्द जी के शिष्यों में एक थे हमारे गुरु, स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जिन्होंने सन् 1963 में मुंगेर में बिहार योग विद्यालय की स्थापना की। आज मुंगेर का योग विद्यालय विश्व में योग आंदोलन का एक प्रमुख केन्द्र बना है जहाँ स्वामी शिवानन्द जी और स्वामी सत्यानन्द जी के विचारों से प्रेरित होकर योग की शिक्षा दी जाती है। यहाँ केवल हठयोग या राजयोग या कुण्डलिनी-योग या भक्तियोग की मात्र सैद्धांतिक शिक्षा नहीं दी जाती, बल्कि जीवन के व्यवहार में आत्मसात् करने येाग्य और अपने जीवन को अच्छा बनाने के लिए योग की सभी महत्त्वपूर्ण शाखाओं को समन्वित कर, एक समग्र योग पद्धति के रूप में अत्यंत व्यावहारिक ढंग से योग की शिक्षा प्रदान जाती है। आज इस समग्र योग पद्वति को 'बिहार योग' या 'सत्यानन्द योग' के नाम से जाना जाता है।

यौगिक अनुसंधान

जब बिहार योग विद्यालय द्वारा योग के प्रचार का कार्य आरम्भ हुआ, उस समय जो पहला कार्य हम लोगों ने किया था वह था अनुसंधान। योग के द्वारा शरीर, मन और भावनाओं को क्या लाभ हो सकता है, इसे जानने का प्रयास किया जाए। हम आसन करते हैं, आसन का शरीर के आंतरिक अंगों पर क्या असर होता है? बीमारियाँ कैसे दूर हो सकती हैं? शरीर में संयम की स्थापना कैसे होती है? ऐसे अनेक विषयों पर अनुसंधान हुआ और जब सत्तर के दशक में हम लोगों ने शोध आरम्भ किया उस समय भारत के अनेक चिकित्सा महाविद्यालयों और बहुत-से विख्यात चिकित्सकों का सहयोग प्राप्त हुआ। सन् 1976-1977 में हम लोगों ने कलकत्ता में विशेष अनुसंधान किया था और उस समय यह साबित किया था कि चालीस दिनों तक नित्य योगाभ्यास के द्वारा डायबिटीज़ की बीमारी, जिसमें इन्सूलिन पर निर्भरता नहीं होती है, पूरी तरह ठीक हो सकती है। यह शोध कुर्ला मेडिकल कॉलेज, उड़ीसा के सहयोग से हुआ।

स्वयम् को जानो योगोत्सव
भारत यात्रा २०१४
Know Yourself Yogotsav
Bharat Yatra 2014
श्री स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती, परमाचार्य, बिहार योग विद्यालय,विश्व योगपीठ, मुंगेर, बिहारके पावन उपस्थिति में
पूज्य गुरुदेव अनन्तविभूषित श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती जी के श्रीचरणों में समर्पित
खुदीराम अनुशीलन केन्द्र, इडेन गार्डनस्, कोलकाता
29 एवं 30 जुलाई, 2014
Khudiram Anushilan Kendra, Eden Gardens, Kolkata
29th & 30th July, 2014

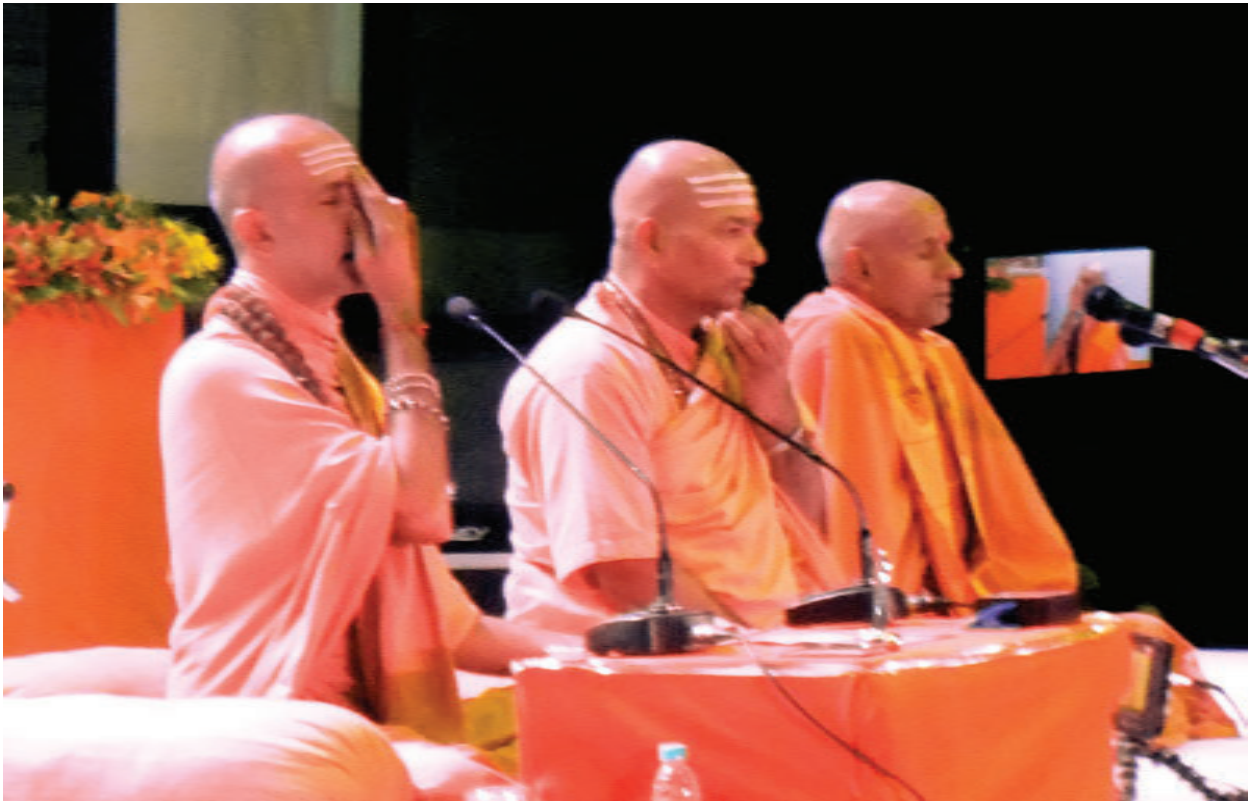

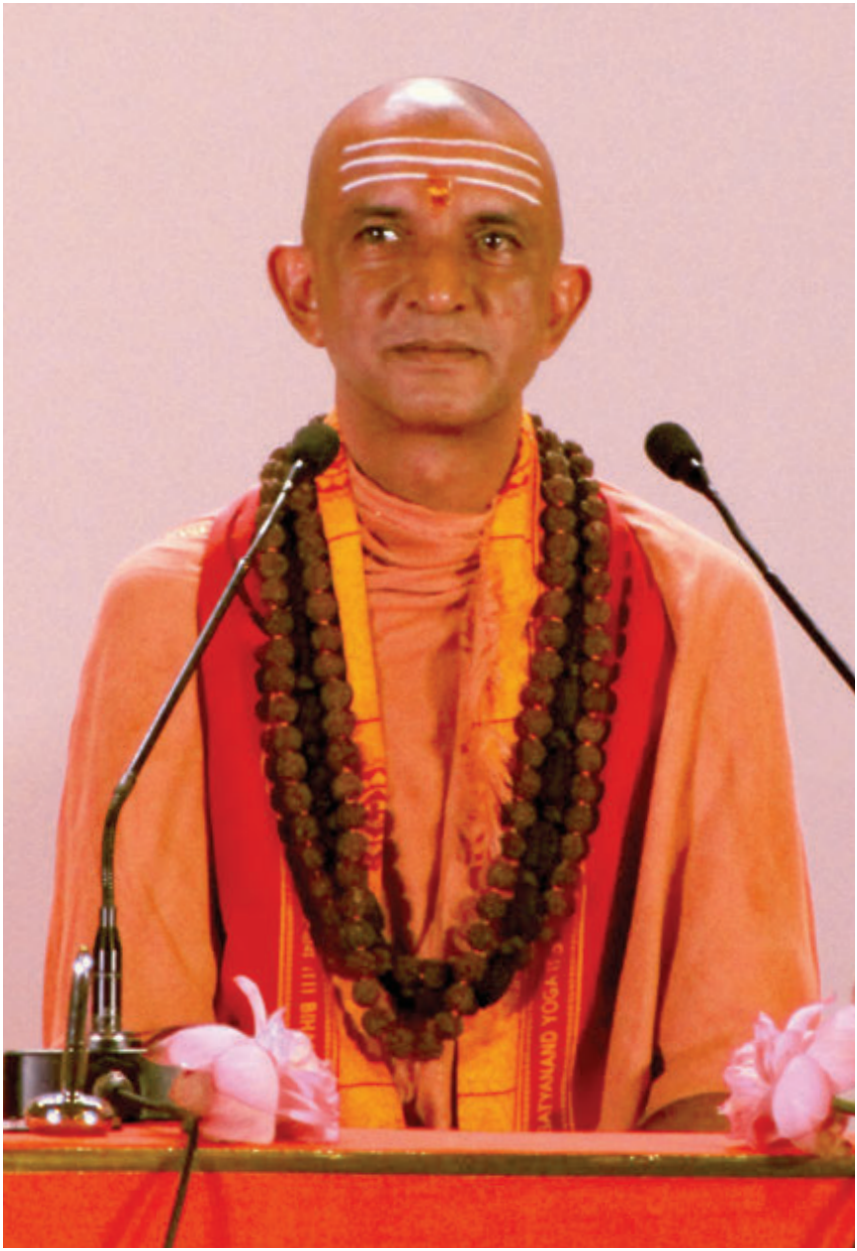

इसी प्रकार दमा, त्वचा रोग और उच्च रक्तचाप जैसे रोगों पर योग के प्रभावों से संबंधित अनेक अनुसंधान हुए। मुम्बई के कामा अस्पताल में उच्च रक्तचाप पर शवासन के प्रभाव से संबंधित अनुसंधान हुआ। उस समय वहाँ पर डॉ. के.के. दाते थे जिन्होंने यह साबित किया कि मात्र पाँच मिनट के शिथिलीकरण से आप अपने रक्तचाप को नियन्त्रित कर सकते हैं। रक्तचाप को दबाने के लिये गोली खाने की आवश्यकता नहीं है। इस प्रकार भारत में अनेक प्रकार के शारीरिक अनुसंधान किये गये जिनका सम्बन्ध रोग के निवारण से था। पाश्चात्य देशों में अनेकों प्रकार के मानसिक अनुसंधान किये गये, जैसे, मंत्र जप से मस्तिष्क में क्या परिवर्तन होते हैं? अल्फा, बीटा, डेल्टा और थीटा तरंगों में से कौन-सी तरंग मस्तिष्क में ध्यान के समय जागृत होती है? हमारे गुरुजी ने योग को एक विद्या और एक विज्ञान के रूप में स्थापित करने के लिये इस तरह के शारीरिक और मनोवैज्ञानिक अनुसंधानों पर सबसे पहले जोर दिया।

सन् 1983 में हमारे गुरुजी ने योग को एक शिखर तक पहुँचाकर आश्रम से भी संन्यास ले लिया। उनका मानना था, 'मैंने गुरु बनने या नाम-यश कमाने के लिये संन्यास नहीं लिया है। मैंने जब संन्यास लिया था तब मेरा उद्देश्य था, खुद को जानना। संसार में मैंने जो काम किया वह अपनी महत्त्वाकांक्षाओं को पूरा करने के लिये नहीं, बल्कि अपने गुरु के आदेश को पूरा करने और अपने कर्मों को समाप्त करने के लिये किया। अब मैं संन्यास मार्ग में आगे बढ़ने के लिये तैयार हूँ।' बिहार योग विद्यालय के कार्यों से संन्यास लेकर पुन: एक परिव्राजक साधु

के रूप में वे आश्रम छोड़कर चले गये और जाने के पहले उन्होंने हमें बिहार योग विद्यालय की जिम्मेदारी सौंपी।

उद्योगों में योग

जब हमारा कार्यकाल आया तब सामान्य योग प्रशिक्षण के अतिरिक्त हमने प्रयास किया कि योग का एक स्थायी कार्यक्रम समाज के विभिन्न क्षेत्रों और प्रतिष्ठानों में लागू किया जाए। योग को, जिसे लोग अभी तक साधुओं या आध्यात्मिक जीवन में रुचि रखने वाले कुछ लोगों की साधना मानते थे, समाज तक पहुँचाना एक बहुत बड़ी चुनौती थी। इसके लिए हमलोगों ने आई. ओ. सी., एन. टी. पी. सी., कोल इण्डिया और हिन्दुस्तान पेपर जैसे अनेक सरकारी उद्योगों एवं कार्यालयों में अधिकारियों और कर्मचारियों के स्वास्थ्य के लिये योग को जोड़ा, जिसके बहुत अच्छे परिणाम आये।

इसका एक उदाहरण देता हूँ। इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन के एच.आर.डी. विभाग को मुंगेर से हम लोगों ने तीन साल तक एक तरह से रिमोट कन्ट्रोल से सम्भाला था। इन तीन सालों में वहाँ के अधिकारियों या मजदूरों के बीच कोई झड़प, कोई बहस नहीं हुई। बल्कि रिफाईनरी के उत्पादन और कर्मचारियों की कार्य-कुशलता में 28 प्रतिशत बढ़ोत्तरी हुई। कर्मचारियों की चिकित्सा संबंधी छुट्टियों में कमी आई और चिकित्सा खर्च में भी बहुत कमी आई। इण्डियन ऑयल कॉरपोरेशन में किए गए इस प्रयोग से स्पष्ट है कि योग से व्यक्तिगत जीवन में और किसी भी संस्था की व्यवस्था में, दोनों स्तरों पर लाभ होता है।

कैदियों का मानसिक परिवर्तन

बिहार के सभी जेलों में आज भी हम लोग कैदियों की मनोवृत्ति में परिवर्तन के लिये योग का प्रशिक्षण देते हैं। सत्तर हजार कैदियों का योग करने के पहले और योग करने के पश्चात् मनोवैज्ञानिक विश्लेषण किया गया जिसमें यह पाया गया कि योगाभ्यास के द्वारा उन लोगों के जीवन में आक्रोश, संताप, ग्लानि और द्वेष जैसी नकारात्मक भावनाओं और विभिन्न बुरी आदतों में कमी आई। उनके भीतर प्रतिशोध की भावना भी बहुत कम हो गई और उनके मन में शान्ति की भावना बढ़ी। अंत में जो आजीवन कैदी थे उन्हें हम लोगों ने योग शिक्षक के रूप में तैयार किया जिनके द्वारा आज सभी जेलों में योग प्रशिक्षण का कार्य किया जा रहा है।

रेल कर्मचारियों के लिए योग

रेलवे बोर्ड के अध्यक्ष जब मुंगेर आये थे तब उनसे बात हुई थी कि रेल विभाग में योग को लागू किया जाए। तब तुगलकाबाद, चन्दौसी, जमालपुर और हावड़ा,

इन चार स्थानों में एक प्रोजेक्ट के रूप में, रेलवे बोर्ड के उच्च अधिकारी से लेकर ट्रेन चालक तक, सबको एक साथ योग का प्रशिक्षण दिया गया था। उसके बाद जो आँकड़े हम लोगों को प्राप्त हुए, उससे हमें यह अन्दाज मिला कि योग का सबसे अच्छा परिणाम ट्रेन चालकों को मिला है। उन्हें सबसे अधिक लाभ योगनिद्रा से प्राप्त हुआ। ट्रेन चालक जब योगनिद्रा करते थे, विशेषकर जो रात्रि के समय में ट्रेन चलाते थे, तब वे ट्रेन चलाते समय पूर्व की अपेक्षा अधिक सतर्क रहने लगे और उन्हें आलस्य, सुस्ती या तंद्रा का अनुभव नहीं होता था। वे अपने कार्यों को अधिक दक्षता, जिम्मेवारी और सजगता के साथ करने लगे। इसलिए, जमालपुर में आज तक लगातार हर बैच के प्रशिक्षुओं को हम प्रशिक्षण देते आ रहे हैं। वहाँ साल के तीन सौ पैंसठ दिन योग प्रशिक्षण का कार्य चलते रहता है।

उपचारात्मक योग

इसी प्रकार मेडिकल कॉलेजों में भी हम लोगों ने विद्यार्थियों और अध्यापकों को योग थैरेपी का प्रशिक्षण दिया है। बिहार सरकार के स्वास्थ्य विभाग के अनुरोध पर हम लोगों ने एक पुस्तक भी प्रकाशित की है, जिसका नाम है 'योग और रोग'। इसमें 36 सामान्य रोगों का निदान योग के माध्यम से कैसे होता है यह बतलाया गया है। यह पुस्तक हमारे राज्य के सभी मेडिकल कॉलेजों के विद्यार्थियों को दी जाती है और साथ-साथ उन्हें योग का व्यावहारिक प्रशिक्षण भी दिया जाता है ताकि वे चिकित्सा में योग की सहायता लेकर अपने मरीजों का बेहतर उपचार कर सकें।

इस प्रकार हम लोगों की इच्छा है कि फिर से योग अपने देश की संस्कृति का एक अभिन्न अंग बन जाए। योग केवल अध्यात्म विद्या नहीं है, बल्कि इसका सम्बन्ध जीवन की व्यावहारिकता के साथ भी है। संन्यासी होकर भी हम एक योग शिक्षक के रूप में आपको योग सिखाते हैं, इसका यह मतलब नहीं कि योग करने के लिए आपको भी संन्यास लेना पड़ेगा। संन्यास हमारा व्यक्तिगत् जीवन है और एक योग शिक्षक के रूप में कार्य करना हमारा सामाजिक जीवन हैं।

विश्व योग सम्मेलन

पिछले वर्ष बिहार योग विद्यालय की स्वर्ण जयन्ती हम लोगों ने मुंगेर में विश्व योग सम्मेलन के रूप में मनाई थी। इस कार्यक्रम में पूरे विश्व से करीब चालीस हजार लोग पाँच दिन के लिये मुंगेर में एकत्र हुए थे। पिछले पचास वर्षों में इन्होंने योग से क्या प्राप्त किया, क्या उपलब्धियाँ हासिल कीं, उसका वर्णन किया। शिक्षा, चिकित्सा, सेना और अन्तरिक्ष यात्राओं जैसे विविध क्षेत्रों में योग का किस प्रकार समावेश किया गया है, इन सब विषयों पर चर्चा की गई। बिहार योग विद्यालय की इन सब परियोजनाओं में बहुत अहम भूमिका रही है। उदाहरण के तौर पर

भारतीय सेना के सैनिकों को हम लोग सियाचीन बेस केम्प और राजस्थान के रेगिस्तानी इलाकों में योग सिखाते थे। इन सब प्रयोगों से एक चीज स्पष्ट रूप से हमको दिखलाई दी कि योग मनुष्य को अपने कर्तव्यों का निर्वाह करने में ज्यादा सक्षम बनाता है।

इस विश्व योग सम्मेलन में पचास वर्षों की उपलब्धियों को जब समाज के सामने रखा गया तब मन में विचार आया कि क्यों न हम अपनी परम्परा के इस प्रसाद को अपने देश के गाँव-गाँव और नगर-नगर में वितरित करें। इस विचार से प्रेरित होकर इस वर्ष हमने योगयात्रा प्रारम्भ की है, जिसके पहले चरण में अपने देश के बड़े नगरों में योगयात्राएँ करने की योजना है। फिर अगले चरण में मध्यवर्गीय नगरों में यात्राएँ की जाएँगी और तीसरे चरण में गाँवों में योगयात्राएँ की जाएँगी। इस प्रकार योग की शिक्षा को, योग की जागृति को सम्पूर्ण देश में लाने का एक छोटा-सा प्रयास हम लोग कर रहे हैं।

–26 जुलाई 2014, रेलवे क्लब, बेल्वेडियर पार्क, कोलकाता

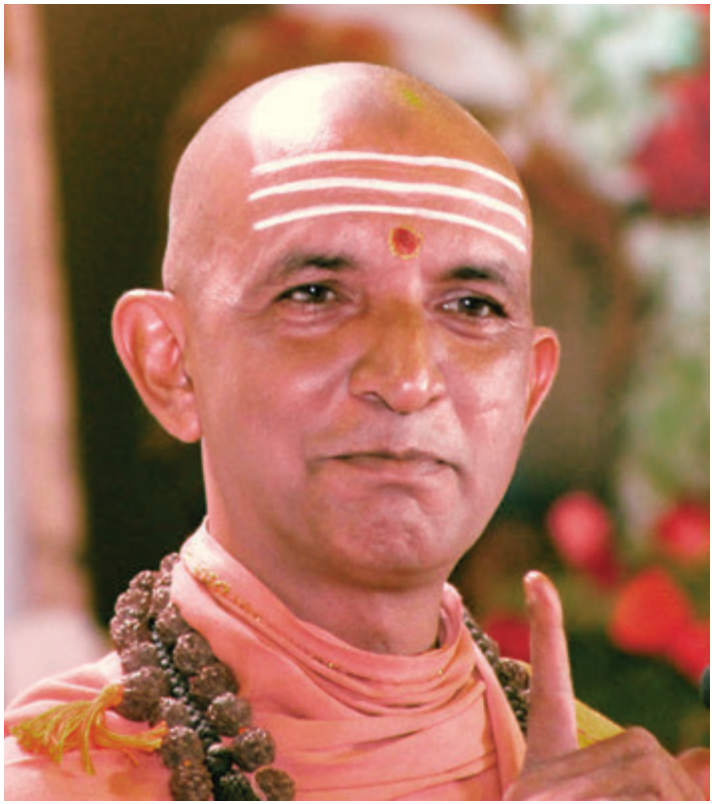

मानसिक स्वास्थ्य के लिए प्रत्याहार

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

मनुष्य का मन भोग करता है, पर उस भोग का अवशेष मन में ही जमा हो जाता है, निकलता नहीं है, उसका निष्कासन नहीं होता है। बहुत बार लोगों को मानसिक कब्ज की बीमारी होती है, और बहुत बार लोगों को मानसिक दस्त भी हो जाता है। मानसिक दस्त का मतलब वे बकने लगते हैं, उनके मन में जो रहता है वह दस्त की तरह निकलने लगता है, और मानसिक कब्ज का मतलब हम सभी चीजों को अपने भीतर दबाकर रखते हैं। घृणा भी दबी है, द्वेष भी दबा है, करुणा भी दबी है, क्रोध भी दबा है, सब कुछ दबा हुआ है, यह मानसिक कब्ज है। इसीलिये मन में हमेशा तनाव और चिन्ता रहती है, हम अपने मन के विकारों को दूर नहीं कर पाते हैं। योग कहता है कि जैसे शरीर को स्वस्थ रखने के लिये शरीर को मल, मूत्र आदि विकारों से मुक्त रखा जाता है, वैसे ही मन के स्वास्थ्य के लिये भी मन को तनावमुक्त, चिन्तामुक्त और अवसादमुक्त रखना आवश्यक है।

इसके लिये राजयोग में जो तरीका बतलाया गया है वह प्रत्याहार का अभ्यास है। यह चीज आप लोगों को अच्छी तरह समझनी चाहिये क्योंकि आपकी तनावमुक्ति के लिये प्रत्याहार अति आवश्यक है। प्रत्याहार का मतलब होता है अपने प्रति सजग बनना। अभी हम अपने प्रति सजग नहीं हैं। हमारे मन में क्या क्रिया-प्रतिक्रिया हो रही है, किस प्रकार के विचार आ रहे हैं, किस प्रकार की संवेदनायें उत्पन्न हो रही हैं, इसका आभास हमें अभी नहीं हो रहा। लेकिन प्रत्याहार की अवस्था में हम अपने प्रति सजगता का विकास करते हैं और इस प्रक्रिया की शुरुआत होती है योगनिद्रा के माध्यम से। हो सकता है कि आप में से बहुत लोगों ने योगनिद्रा का अभ्यास किया भी हो। जिन्होंने इस अभ्यास को किया है वे जानते हैं कि यह शिथिलीकरण का एक अभ्यास है। इस अभ्यास में आपको कुछ करना नहीं होता है, केवल जमीन पर लेट जाना होता है और शिक्षक के निर्देशों का पालन करना पड़ता है। शिक्षक आपकी चेतना को, आपके मन को शरीर के विभिन्न अंगों पर ले जाता है, विभिन्न अवस्थाओं के प्रति सजग बनाता है और आप शरीर, तंत्रिका तंत्र एवं आंतरिक अंगों को विश्राम की स्थिति में ले आते हैं।

जब शरीर विश्राम की अवस्था को प्राप्त करता है, तब इसका प्रभाव पड़ता है मन पर, क्योंकि मन और शरीर आपस में जुड़े हैं। मन है सूक्ष्म, शरीर है स्थूल। शरीर का अनुभव सबको होता है क्योंकि दिखलाई देता है, लेकिन मन का अनुभव केवल विचारों, इच्छाओं, वासनाओं या महत्त्वाकांक्षाओं द्वारा होता है। शरीर एक दृश्य वस्तु है, लेकिन मन एक अनुभूति है जिसे आप जान सकते हो अपने विचारों,

भावनाओं और इच्छाओं को देखकर। ये विचार जो आ रहे हैं, यही हमारा मन है। ये भावनायें जो उत्पन्न हो रही हैं, यही हमारा मन है। ये इच्छाएँ जो उत्पन्न हो रही हैं, हमारे मन से उत्पन्न हो रही हैं। ऐसे अनुभवों को देखकर आप कहते हो कि ये मन से उत्पन्न हो रहे हैं।

शरीर जब शान्त अवस्था को प्राप्त करता है तब मन भी अन्तर्मुखी हो जाता है। जब मन अन्तर्मुखी होता है तब विश्राम को प्राप्त करता है। एक बार एक व्यक्ति हमारे पास आये, जो एक वरिष्ठ सरकारी पद पर रह चुके थे। जब वे हमारे पास आये तो कहा कि हम दो साल से सो नहीं पाये हैं। नींद की गोली भी खाते हैं, लेकिन एक से काम नहीं चलता दो-तीन खानी पड़ती हैं, तब जाकर नींद आती है। जिस दिन हम गोली नहीं खाते हैं रातभर बिस्तर में करवट बदलते रहते हैं। इसका क्या उपचार है?

हमने कहा कि देखिये, हम उपचार की बात तो नहीं करेंगे क्योंकि उपचार न हम पर निर्भर करता है और न योग पर, उपचार निर्भर करता है आपकी इच्छा पर। अगर आप सही तरीके से योग का अभ्यास करेंगे तो इसका फायदा अवश्य होगा। इतना कहकर हमने उनको एक सप्ताह तक केवल योगनिद्रा करवाई। चौथे दिन वे योगनिद्रा में सो गये। उनके शिक्षक भी कक्षा से उठकर बाहर निकल गये। तीन घण्टे वे वहाँ सोये। जब उनकी नींद खुली तो देखा कि शिक्षक गायब हो गया है, कमरे में अकेले सोये हैं। वे हड़बड़ा कर उठे। पर उनके चेहरे पर इतनी प्रसन्नता थी कि वे दौड़ते-दौड़ते हमारे पास पहुँचे और सीधे पैर पकड़ लिए। कहा कि स्वामीजी, आज तो मैं सो गया!

मैं मात्र एक उदाहरण दे रहा हूँ कि इस विधि से जब हम अपने शरीर को सजगतापूर्वक शिथिल करते हैं, तनाव को दूर करते हैं तो मन अन्तर्मुखी हो जाता है और एक बार जब मन अन्तर्मुखी हो जाए तब विश्राम की स्थिति को प्राप्त करता है। यह प्रत्याहार की स्थिति है और इसमें प्रथम अभ्यास है योगनिद्रा का।

दूसरा अभ्यास जो हम आप लोगों के लिये आवश्यक मानते हैं वह श्वास की सजगता से सम्बन्धित है। आप लोगों का जीवन बहुत ही तनावग्रस्त होता है। विशेषकर जब कोई अतिरिक्त परेशानी आ जाए तब तो फिर समय पर सोना और जगना भी बहुत मुश्किल हो जाता है। उस समय क्या करना चाहिये? प्राणायाम करना चाहिए और मंत्र के साथ करना चाहिए। इसका सबसे सरल तरीका इस प्रकार है। मान लो कि आप गाड़ी में सफर कर रहे हो। आँखें खुली हैं तो खुली रहें, आप केवल श्वास पर ध्यान दो। जब आप श्वास लेते हो तो उस समय नासिका-छिद्रों में हल्की ठण्ढक का आभास होता है और जब श्वास छोड़ते हो तो गर्माहट का अनुभव होता है। नासिका-छिद्रों में ठण्ढेपन और गर्माहट के अनुभव पर ही आप शुरू में अपने मन को एकाग्र कीजिये।

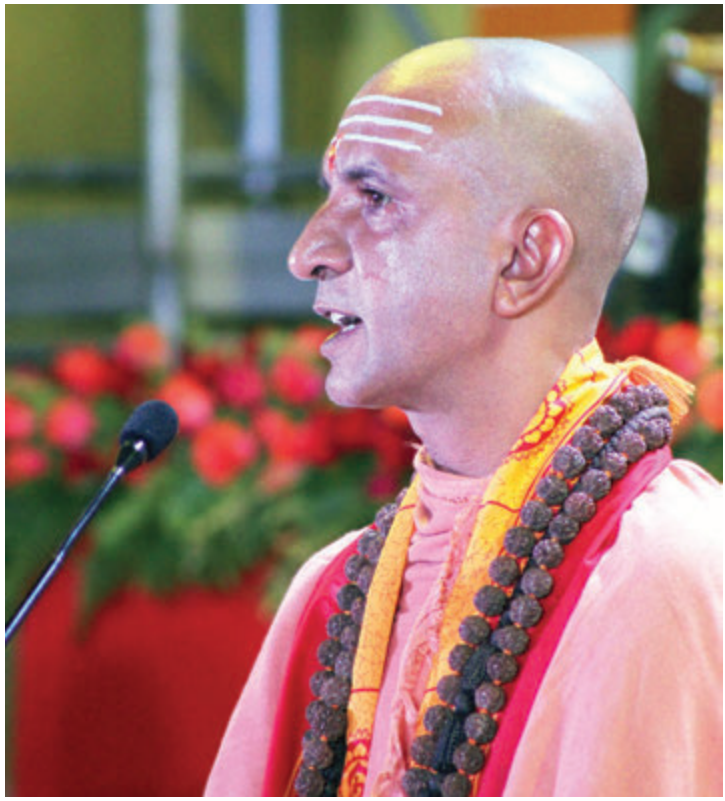

बाद में एक और चीज जोड़िये। जब श्वास अन्दर लेते हैं तब उस समय एक मंत्र कहें 'सो' और जब श्वास बाहर छोड़ते हैं तब मंत्र कहें 'हम्'। सोऽहम्–यह कोई धार्मिक मंत्र नहीं, श्वास का मंत्र हैं। कबीरदास जी कहते हैं–

ऐसा जाप जपो मन लाई, सोऽहम् सोऽहम् सुरता गाई।
छः सौ सहस इक्कीसौ जाप, अनहद उपजै आपे आप॥

मतलब मन को अपनी श्वास पर इस हद तक केंद्रित करें कि आपकी श्वास स्वतः गाने लगे–सोऽहम्, सोऽहम्। पाँच मिनट चलते-चलते या गाड़ी में भी, खुली आँखों से हम श्वास का ख्याल करके अगर सोऽहम् मंत्र का जप कर लें तो बहुत हद तक मानसिक तनाव समाप्त हो जायेंगे और मानसिक स्पष्टता आ जायेगी। आपके निर्णय ठीक होंगे, आपका विश्लेषण सही होगा। मन को सम्भालने का यह एक बहुत सरल तरीका है–श्वास और सोऽहम् मंत्र।

–26 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

प्रेरणा के स्रोत

संन्यासी ऋषिपुत्र, कौलकाता

जैसे घोर प्यास से तड़पते मनुष्य को शीतल जल पीने का सुख मिले, जैसे तपते सूर्य से जलते मनुष्य को गंगा स्नान से शांति मिले तथा जैसे लम्बी मरुभूमि में सफर करते मनुष्य को मरूद्यान का आनन्द मिले, वैसा ही सुख, वैसी ही शांति और वैसा ही आनन्द कलकत्तावासियों को स्वामीजी के सत्संग से प्राप्त हुआ। उस समय लोगों को पलक झपकाने में भी कष्ट का अनुभव हो रहा था, कारण वह कृत्य भी उनके प्रफुल्लित मुखारविंद के दर्शन का बाधक बन रहा था।

सत्संग के प्रभाव से कलकत्तावासियों का परकीय भाव हर कर स्वकीय भाव आ गया। स्वामीजी के साथ, एक बार तो अपने दु:ख-दर्द को भूल कर, सब लोग कीर्तन के शब्दों के साथ नाचने लगे। लोगों के हृदय द्वार खुल गये और लोग आपस में कुशल-क्षेम पूछने लगे। और तो और, लगा जैसे एक बार 'वसुधैव कुटुम्बकम्' चरितार्थ हो गया।

तरुवर फल नहीं खात है, नदी न संचै नीर।
परमारथ के कारने साधुन धरा सरीर॥

इसको चरितार्थ करने के लिये परमहंस जी द्वारा आवाहित, दिव्य लोकों से अवतरित, मैत्री, करुणा, मुदिता, उपेक्षा आदि सत्त्वगुणों से परिपूरित, श्री स्वामी

निरंजन जी ने सब कलकत्तावासियों को अपनी करुणा के वशीभूत होकर अपने वचनामृत से कृतार्थ ही कर दिया।

भागवत कहता है कि सत्संग तो ईश्वर दर्शन से भी अधिक श्रेष्ठ है। भागवतों को जब ईश्वर ने दर्शन दिया और वर मांगने को कहा तो उन्होंने सत्संग का ही वर मांगा था। स्वामीजी ने कार्यक्रम को सत्संग की संज्ञा देकर उसकी महिमा और बढ़ा दी। एक बात और कि स्वामीजी ने अपना ही उदाहरण देते हुए शिक्षा के अलावा संस्कार के महत्त्व को समझाया। बच्चों के व्यक्तित्व की नींव को दृढ़ बनाने के लिये संस्कारों की अत्यधिक आवश्यकता है।

कलकत्ता तो माँ की नगरी है और माँ की उस नगरी ने स्वामीजी का हृदय खोल कर स्वागत किया। और क्या कहें, जैसे शिवजी की जटाओं से निकली गंगा से पूरी मानवता धन्य हो गई वैसे ही स्वामीजी से निकली उस ज्ञान गंगा से नहाकर सारा कलकत्ता धन्य हो गया। स्वामीजी ने भी अपना पूरा हृदय खोलकर हर श्रोता के दिल को ज्ञान, भक्ति और प्रेम से सराबोर कर दिया।

जैसा स्वामीजी ने ही कहा कि समाधि का प्रयास स्वार्थ है, तो फिर इस प्रकार जनसाधारण को सुख देना, उनके दु:ख को हरना तथा उनके जीवन को दिशा दिखलाना ही लगता है जैसे परमार्थ है। परमहंसजी की शिक्षा–'दूसरों के लिये जीना' के हमारे स्वामी निरंजन जी एक ज्वलंत उदाहरण हैं तथा हम सबके लिये प्रेरणा के एकमात्र महान् स्रोत हैं।

योग की परिणति–सेवा, प्रेम और दान

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

हमारे गुरुजी ने योग के अतिरिक्त एक ओर विद्या प्रदान की है। हमारे गुरुजी और हमारे परमगुरु स्वामी शिवानन्द जी मानते थे कि जीवन में दो अवस्थायें होती हैं। एक अवस्था है सीखने की, अनुभव प्राप्त करने की, और दूसरी अवस्था है उन सीखों और अनुभवों को अभिव्यक्त करने के लिये। जो योग साधना है वह शिक्षा है, अनुभव को प्राप्त करने की विधि है, जिससे हम अपनी प्रतिभाओं को जागृत करते हैं, अपने जीवन में परिवर्तन लाते हैं, अपने जीवन की शक्ति, सामर्थ्य और ऊर्जा की वृद्धि होती है। यहाँ तक हमने योग साधना से प्राप्त किया, और जो प्राप्त किया है, उसका वितरण अब कर्मों की अभिव्यक्ति द्वारा होना है। कर्मों की जब अभिव्यक्ति होती है तो उसके लिये अपनी मनोवृत्तियों को थोड़ा-सा व्यवस्थित करना जरूरी होता है।

साधना के बल पर जिस प्रतिभा और रचनात्मकता को हमने प्राप्त किया है, अब हमारे परिवार और कार्यक्षेत्र में उसकी अभिव्यक्ति होनी है। इसके लिए हमें तीन अवस्थाओं या भावनाओं को अपने मन में साथ लेकर चलना पड़ता है। पहली है सेवा की भावना, दूसरी है प्रेम की भावना और तीसरी है दान की भावना। ये तीनों मनुष्य के जीवन में सकारात्मक अभिव्यक्ति के माध्यम बनते हैं।

सेवा का सम्बन्ध तो कर्म से ही होता है। लेकिन जब कर्म हम अपने लिये, अपनी संतुष्टि के लिये करते हैं तब वह कर्म सकाम होता है। उससे हमें ही सुख मिल रहा है। तब फिर वह कर्म बंधन का कारण भी बनता है। मनुष्य के दृष्टिकोण को, विचारों को वह कर्म सीमित कर देता है और जब वे सीमित हो जाते हैं तब फिर वह व्यक्ति अपनी ही वृत्तियों से घिरा हुआ और स्वार्थी दिखलाई देता है। मुझे और चाहिये, मुझे और चाहिये, मुझे और चाहिये, उसकी सभी वृत्तियाँ स्वार्थ से युक्त होती हैं और निन्यानवे का चक्कर हमेशा बना रहता है। निन्यानवे में भी संतुष्टि नहीं, एक और चाहिये। यही जीवन में संघर्ष का कारण हो जाता है।

स्वार्थ जीवन में हमेशा संघर्ष करवाता है और मनुष्य को संसार में और बांधता है। लेकिन जब आप अपनी वृत्तियों को बदलकर कर्म करते हो तो वह अपने लिए नहीं, बल्कि दूसरों के हित के लिये, दूसरों के चेहरे पर हर्ष देखने के लिये होता है। तब भी वह कर्म ही होता है, लेकिन बंधन का कारण नहीं होता और उससे दूसरों को सुख मिलता है। जिस कर्म से दूसरों को सुख मिले वह निष्काम कर्म होता है, और जिस कर्म से हमें सुख मिले वह स्वार्थयुक्त कर्म होता है। स्वार्थ का मतलब आप जानते हैं न! 'स्व' का मतलब मैं और 'अर्थ' का मतलब अपने लिये। स्वार्थ

का मतलब ही होता है अपने लिये किया गया कार्य, जबकि नि:स्वार्थ का मतलब होता है दूसरों के लिये किया गया कार्य। यही अन्तर है। स्वार्थ से युक्त कर्म बंधन का कारण बनता है और नि:स्वार्थ की भावना से जुड़ा हुआ कर्म सुख का कारण बनता है। सेवा का मतलब है मन की एक ऐसी भावना जिसमें स्वार्थयुक्त वृत्तियों को नि:स्वार्थ वृत्तियों में बदलने का प्रयास होता है। सेवा में भाव बदल जाता है।

इसी प्रकार से दूसरी भावना है प्रेम। प्रेम अगर वास्तविक प्रेम है तो उसमें न कोई व्यक्ति भूखा रहता है, न दरिद्र। माँ को देख लो। माँ अपने संतान से प्रेम करती है। जब बेटे को भूख लगती है तो माँ अपनी रोटी भी बेटे को खिला देती है। बलिदान करके, त्याग करके अपनी रोटी बेटे को खिलाती है ताकि बेटा भूखा न रहे। जहाँ पर प्रेम है वहाँ पर भूख कभी नहीं। जहाँ पर प्रेम है वहाँ पर दरिद्रता कभी नहीं। अगर आपका बेटा धन के अभाव में आपके पास आता है और आप उससे प्रेम करते हैं तो आप उसे पैसा दे देते हैं। लेकिन जिससे आपको प्रेम नहीं है अगर वह अभाव में भी आयेगा तो आप उसे एक फूटी कौड़ी तक नहीं दोगे। प्रेम मनुष्य को मनुष्य के साथ जोड़ता है, मनुष्य को मनुष्य की आवश्यकता के प्रति संवेदनशील बनाता है और उस आवश्यकता की पूर्ति हेतु आपको कुछ करने के लिये प्रेरित करता है।

इसलिये जो शुद्ध प्रेम है उसमें न दरिद्रता है, न भूख। उसमें सभी अभाव पूर्ण हो जाते हैं, कोई कमी नहीं रहती। यह भी एक भावना है, सात्त्विक वृत्ति है कि हम अपने मन के भीतर प्रेम की संवेदनशीलता को जागृत करें ताकि दूसरों के दु:खों को समझ पायें और उनके निवारण के लिये भले ही सौ प्रतिशत न कर पायें, पर फिर भी कम-से-कम एक प्रतिशत प्रयास तो अवश्य कर सकते हैं।

उसके बाद जो तीसरी भावना है देने की, वह हमेशा सहायता के लिए तत्पर रहने की भावना है। देने का मतलब यह नहीं कि हम अपनी जेब खाली कर दें। देने का मतलब है कि अगर किसी व्यक्ति को हमारी सहायता की आवश्यकता हो, तो हम कभी उसमें पीछे नहीं रहें, बल्कि हमेशा सहायता के लिये आगे रहें, तत्पर रहें और यथासम्भव सहायता के लिए प्रयास करें।

योग की जो प्राप्ति है वह सेवा, प्रेम और दान में अभिव्यक्त होनी चाहिये। अगर आप समाधि को प्राप्त कर भी लोगे और ईश्वर के सामने जाओगे तो ईश्वर कहेंगे, 'बेटा, तुम मेरे पास नहीं आ सकते हो क्योंकि तुमने अपने सुख के लिये समाधि प्राप्त की है। अब तुम वापस जाओ और दूसरों के जीवन के दु:खों को दूर करने का प्रयास करो। जिस दिन तुम दूसरों के जीवन के दु:खों को दूर कर पाओगे और फिर मेरे सामने आओगे तब मैं तुम्हें अपने बगल में बैठाऊँगा।' यह ईश्वर का वाक्य रहेगा, उस योगी, उस व्यक्ति के लिये जिसने ध्यान करके समाधि को प्राप्त किया है, पर समाज के लिये एक अंश भी योगदान नहीं दिया है।

आखिर समाधि भी तो स्वार्थ की भावना से प्रेरित होती है। हम समाधि प्राप्त करेंगे, यह तो हमारा स्वार्थ है। हमने समाधि प्राप्त की पर उससे समाज का क्या फायदा? अगर हमने कुछ अच्छाई को प्राप्त किया है तो उस अच्छाई का वितरण भी तो बाहर होना चाहिये। जैसे बेटे का जन्म होता है तो लड्डू बाँटते हैं। अगर ईश्वर का अनुभव अपने भीतर होता है तो क्या उस समय हम चुप-चाप अपने कमरे में आँखें बंद करके बैठे रहेंगे या बाहर आकर उस प्रसाद को, उस आनन्द को समाज में बाँटेंगे? यह हमलोगों का दर्शन है और यही शिक्षा हमारी परम्परा की है जिसकी शुरुआत होती है स्वामी शिवानन्द जी से। वही धारा आज प्रवाहित हो रही है स्वामी सत्यानन्द जी की शिक्षाओं से और इसी संदेश को जन-जन तक लाने के लिये हम भारत यात्रा पर निकले हैं।

–26 जुलाई 2014, रेलवे क्लब, बेल्वेडियर पार्क, कोलकाता

दान ही जीवन है। सेवा ही जीवन है। दूसरों को सुख देना ही जीवन है। दूसरों के साथ अपनी सम्पत्ति बाँटना ही जीवन है। जीवन का प्रयोजन अच्छा बनने और अच्छा करने में निहित है। अगर आप ऐसा कर पाते हैं तो आप अवश्य शान्ति और अमरत्व को प्राप्त कर सकेंगे। आपको ऐसा अनुभव होना चाहिए कि आप अपनी सम्पत्ति के केवल न्यासी या संरक्षक हैं। ईश्वर ने आपको पूँजी दूसरों के साथ बाँटने के लिए दी है। ठण्ढ के दिनों में कम्बल खरीदकर सड़क किनारे सोने वाले गरीबों में बाँट कर देखिए, कैसे अद्भुत आनन्द का अनुभव करेंगे आप!

– स्वामी शिवानन्द सरस्वती

मंत्रों का महत्त्व

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

अगर हम आपके सामने महामृत्युंजय मंत्र का उच्चारण करें तो आपका ध्यान स्वाभाविक रूप से शिवजी पर जाएगा, लेकिन जब हम पाश्चात्य जगत् में महामृत्युञ्जय मंत्र कहते हैं तो कोई भी शिवजी का चिन्तन नहीं करता। पाश्चात्य जगत् में जब मंत्र की बात होती है तब वह किसी धार्मिक प्रतीक से जुड़ा नहीं रहता, बल्कि व्यक्ति की आन्तरिक शक्ति के उत्थान का एक माध्यम बनता है। पाश्चात्य देशों के लोग मंत्रों के लिये बहुत उत्सुक रहते हैं क्योंकि वे मंत्र की ऊर्जा और स्पन्दन का अनुभव करते हैं, इसकी शक्ति का अनुभव करते हैं और मंत्र को किसी धार्मिक प्रतीक के साथ नहीं जोड़ते हैं।

एक मंत्र का उदाहरण देता हूँ, 'ॐ नमः शिवाय'। आप जानते हैं कि 'नमः' का मतलब होता है 'नमस्कार' और अगर हम 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र कहें तो लोग इसका अर्थ लगाते हैं कि 'मैं शिवजी को नमस्कार करता हूँ'। हो सकता है कि हमारे देश के बहुत-से पण्डित और ब्राह्मण भी यही बात लोगों को बतलाते हों कि 'ॐ नमः शिवाय' का अर्थ होता है 'मैं शिवजी को नमस्कार करता हूँ'। लेकिन यह सत्य नहीं है। मंत्रों को न पण्डितों ने बनाया है और न ही ब्राह्मणों ने। मंत्र तो ऋषियों और योगियों की एक अनुभूति है जिसे उन्होंने ध्यान की अवस्था में अनुभव किया। ध्यान की अवस्था में जो अनुभव होता है वह सूक्ष्म होता है, भौतिक पदार्थ से निर्मित नहीं होता। ध्यान की इस सूक्ष्म अवस्था में जब आप बैठे हो, मन शान्त एवं एकाग्र है और बाहर या भीतर के विकार स्वयं को विचलित नहीं कर रहे हैं, तब उस समय अन्तर्नाद की ध्वनि सुनाई देती है, जिसको योग की भाषा में कहा जाता है 'अनहद नाद'।

सामान्य नाद दो वस्तुओं की आपसी ठोकर से उत्पन्न होता है। हम जब बोल रहे हैं उसमें भी तो जीभ, दाँत, तालू सबमें ठोकर लग रही है। ताली से जो आवाज निकलती है ठोकर के कारण निकलती है। लेकिन इसके अतिरिक्त एक नाद है जो मनुष्य द्वारा उच्चारित न होने पर भी उसकी अनुभूति भीतर में होती है। उसको बोलने के लिये अपनी जीभ, दाँत और मुँह का उपयोग नहीं करना पड़ता, यह मन में स्वतः स्फूर्त होता है। उसको कहते हैं अनहद नाद, और मंत्र अनहद नाद होते हैं।

मंत्र और चक्र

क्रियायोग या कुण्डलिनी-योग के ग्रंथों का अध्ययन करने पर आप पाइयेगा कि हमारे शरीर के भीतर में विभिन्न चक्र हैं। इन चक्रों के जो प्रतीकात्मक स्वरूप बतलाये गये हैं वे कमल के फूल सदृश हैं, जिनमें पंखुड़ियों की संख्या अलग-अलग

है। कोई चार पंखुड़ियों वाला है, कोई आठ पंखुड़ियों वाला है तो कोई सहस्त्र पंखुड़ियों वाला है। कमल की हर पंखुड़ी पर एक बीज मंत्र लिखा हुआ है। शारीरिक संरचना के अनुसार देखें तो हमारे मेरुदण्ड में नर्व प्लेक्सेस या नाड़ियों के गुच्छे होते हैं। कुछ महत्त्वपूर्ण नाड़ियाँ इन गुच्छों को नियंत्रित करती हैं और इनको ही चक्र के रूप में समझाया गया है। जो नाड़ी एक नाड़ी-समूह को नियंत्रित करती है, उसका एक बीज मंत्र होता है। इस बीज मंत्र का एक विशेष स्पन्दन होता है, आवृत्ति होती है, जिससे एक तरंग उत्पन्न होती है और वह उस नाड़ी को प्रभावित करती है। जैसे संगीत में अगर एक तरीके से स्वर को गाया जाए तो काँच टूटने लगते हैं। तानसेन जैसे अनेक प्रसिद्ध संगीतज्ञों की कहानियाँ हैं, जो अपने संगीत द्वारा वातावरण में परिवर्तन ला देते थे, दीपक जला देते थे, बादलों से वर्षा करवा देते थे। केवल संगीत की ध्वनि और स्पन्दन के बल पर। यह अन्धविश्वास नहीं, सत्य है। ऐसा सम्भव है, लेकिन इसके लिये इससे संबंधित साधना करना आवश्यक है।

योगी ध्यान की अवस्था में एक मंत्र को प्रकट कर अपने भीतर देखते हैं। यदि वे 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र को अपने अंदर अनुभव करते हैं, तब वे देखते हैं कि यह मंत्र किन चक्रों से जुड़ा है। जैसे ॐ आज्ञा चक्र का बीज मंत्र है। न, म, शि, वा, य—ये सभी अलग-अलग चक्रों से संबंधित हैं जिन्हें जागृत करने में आप सक्षम हो सकते हैं। हर मंत्र का सम्बन्ध मनुष्य की आध्यात्मिक जागृति से रहता है, लेकिन ब्राह्मणों ने मंत्र को लोकप्रिय बनाने के लिये इसे धर्म के साथ जोड़ दिया। उनके अनुसार यदि आप शिवजी की आराधना करते हैं तो आपको 'ॐ नमः शिवाय' मंत्र का पाठ करना चाहिए, ताकि इस मंत्र के अभ्यास से आप अपने मन को अपने आराध्य में केन्द्रित कर सकें। भले ही आपको चक्रों का ज्ञान न हो, लेकिन मंत्र के माध्यम से अपने मन को एक बिन्दु पर टिका सकते हैं और आध्यात्मिक जागृति के पथ पर आगे बढ़ने का कार्य आरम्भ कर सकते हैं। जब ज्ञान हो जाता है तब फिर उस प्रतीक को छोड़कर अपनी शरीरस्थ ऊर्जा पर ध्यान करके उस कुण्डलिनी शक्ति को जागृत कर सकते हैं। मंत्रों का सम्बन्ध धर्म से कभी नहीं था, बल्कि मनुष्य के जीवन में आध्यात्मिक वृत्ति को जागृत करने से था। केवल इसको प्रचलित बनाने

के लिये अपने इष्ट या आराध्य से जोड़ा गया और उसका एक दर्शन बनाया गया ताकि हम अपने जीवन में इन सिद्धान्तों का पालन कर सकें।

महामृत्युंजय मंत्र का महत्त्व

हमारे गुरुजी कहते थे कि आज के युग में समाज, सभ्यता और परिवार, सबका विघटन हो रहा है। मनुष्यों को संस्कार नहीं मिल रहे हैं। परिवार में बड़ों और बच्चों के बीच विचारों का आदान-प्रदान नहीं होता है, केवल एक-दूसरे में दोष खोजते हैं और अपने अस्तित्व को कायम रखने के लिए हठ करते हैं। सभी ऐसा मानते हैं कि वे जो कर रहे हैं वही ठीक है, बाकी सभी लोग गलत हैं। इस परिस्थिति में पारिवारिक शान्ति और स्वास्थ्य के लिये प्रत्येक शनिवार को महामृत्युंजय मंत्र का जप हर योगमय परिवार में होना चाहिये। होना तो चाहिये हर परिवार में, लेकिन जो परिवार योग से जुड़े हैं वे इस मंत्र के महत्त्व और इसके परिणाम को अच्छे से जानते हैं। इस मंत्र की एक माला जप करने के लिये आरम्भ में चालीस मिनट लग सकते हैं, लेकिन अभ्यास के बाद बीस से पच्चीस मिनट ही लगते हैं। अगर बीस-पच्चीस मिनट शाम को परिवार के सभी सदस्य एक साथ बैठकर, परिवार में सुख और शान्ति के संकल्प को लेकर इस मंत्र का एक माला जप करें तो आप खुद अनुभव करेंगे कि दो-तीन सप्ताह में आपके घर-परिवार के वातावरण में सकारात्मक परिवर्तन हो रहा है। घर में संस्कार दिखलाई देंगे, घर में विचारों का आदान-प्रदान होते दिखलाई देगा, घर में एक-दूसरे का सम्मान-सत्कार होते दिखलाई देगा। इस प्रकार हम अपने जीवन को पुन: एक संस्कार, आदर्श, चिन्तन और अनुशासन से जोड़कर शान्ति को प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे गुरुजी ने आश्रम में प्रत्येक शनिवार को सामूहिक रूप से महामृत्युंजय मंत्र के पाठ की परम्परा शुरू की जो आज भी जारी है। जब से उन्होंने इस कार्यक्रम को आरम्भ किया तब से प्रति सप्ताह पूरे विश्व से हमारे पास सैकड़ों पत्र आते हैं कि इस सप्ताह हमारे नाम से भी महामृत्युंजय मंत्र का जप कीजिये। इन पत्रों में लोग अपने और अपने स्वजनों के संपूर्ण कल्याण, स्वास्थ्य, सुख, शान्ति और सफलता के लिए कामना करते हैं।

हम तो कहेंगे कि यह निर्विवाद सत्य है कि जब परिवार में मंत्र जप सामूहिक, संगठित रूप से किया जाए तो जिस सम्बन्ध की उत्पत्ति होती है वह सकारात्मक, गुणात्मक और अच्छे संस्कारों से युक्त होता है। हम लोग भी जब दूसरों के स्वास्थ्य और मंगल के लिये प्रार्थना करते हैं तब बाद में उनके पत्रों से मालूम पड़ता है कि महामृत्युंजय मंत्र के पाठ के पश्चात् उनके जीवन का चक्र सकारात्मक रूप से बदलने लगा। इसलिए हमारा मानना है कि यह एक बहुत शक्तिशाली साधना है। केवल शक्तिशाली साधना ही नहीं, बल्कि एक संन्यासी का संकल्प भी है।

–26 जुलाई 2014, रेलवे क्लब, बेल्वेडियर पार्क, कोलकाता

डिप्लोमा कोर्स के अमूल्य अनुभव

सं. कृष्णप्रेम, मुम्बई (योग अध्ययन में डिप्लोमा, 2014-2015)

डिप्लोमा कोर्स शुरू होने से पहले मेरी यह सोच थी कि शायद यह कोर्स बड़ा कठिन होगा। इसके लिए शायद मुझे बहुत पढ़ना पड़ेगा और महीने-दर-महीने परीक्षाएँ भी होती रहेंगी। मुझे थोड़ी चिंता भी थी कि पता नहीं इस उम्र में यह सब कर पाऊँगा या नहीं, लेकिन जैसे-जैसे यह कोर्स आगे बढ़ा मुझे अनुभव होने लगा कि यह कोर्स तो जैसे शिक्षा देने का आदर्श उदाहरण है।

जिस प्रकार एक बच्चा अपने माता-पिता के प्रेमभरे और सुरक्षापूर्ण वातावरण में सारी बातें खुद-ब-खुद सीखता है, उसे किसी प्रकार के यत्न की आवश्यकता नहीं पड़ती, ठीक उसी प्रकार से स्वामीजी ने बड़े ही सुंदर ढंग से एक स्वाभाविक वातावरण तैयार किया है, जहाँ न किसी प्रकार की पढ़ाई का दबाव है, न ही किसी परीक्षा का दबाव। हर विद्यार्थी यहाँ की शिक्षा को बिना किसी दबाव के बड़ी आसानी से नैसर्गिक रूप से आत्मसात् कर सकता है। इस अद्भुत परिवेश में विद्यार्थी योगविद्या तो सीखता ही है, साथ ही अपने अंदर सद्गुणों का भी विकास करता जाता है।

दूसरी महत्त्वपूर्ण बात मुझे यह लगी कि स्वामीजी हम सबको यह मौका दे रहे हैं कि हम स्वयं को जानें, अपने आप से संबंध स्थापित करें, अपने आप को पहचानें। स्वामीजी ने कई बार अपने सत्संग में यह बात कही है कि आश्रम जीवन के द्वारा अपने मन एवं विचारों पर नियंत्रण करना सीखो और एक बार जब तुम अपने आप को जानकर ऐसा करना सीख लोगे तो इस संसार पर भी तुम्हारा नियंत्रण हो जाएगा।

हमारी दिनचर्या सुबह के आसन-प्राणायाम की कक्षा से शुरू होती थी। इस डेढ़ घंटे की कक्षा में हम सभी विद्यार्थी नये-नये आसन तो सीखते ही थे, साथ-ही-साथ हमारे अंदर एक नयी स्फूर्ति, ऊर्जा व उत्साह का संचार हो जाता था, क्योंकि हम सब नियमित रूप से आसन-प्राणायाम कर रहे थे। इसकी वजह से हमारे अंदर शारीरिक क्षमता काफी बढ़ जाती थी और हमलोग हर तरह के कर्मयोग और सेवा को बड़ी ही आसानी से उत्साहपूर्वक करते।

चाय के बाद हमारी योगनिद्रा और ध्यान की कक्षा रहती थी जिसमें हम अपने मन और बुद्धि को शिथिल कर स्वयं को जानने की प्रक्रिया को आगे बढ़ाते थे, विचारों पर नियंत्रण करना सीखते थे। योगनिद्रा से हमें काफी शारीरिक विश्राम भी मिलता जिससे हम शाम की सेवा व कर्मयोग भी उसी उत्साह और उमंग से करते।

यह इन्हीं आसन, प्राणायाम और योगनिद्रा की कक्षाओं का परिणाम था कि श्री लक्ष्मीनारायण यज्ञ में सत्र के सारे विद्यार्थियों ने बढ़-चढ़ कर हिस्सा लिया। हम सब के मन और बुद्धि बहुत ही ग्रहणशील व रचनात्मक हो गये थे। इस यज्ञ के

बाद स्वामीजी ने एक सत्संग में कहा भी था कि जब संन्यास प्रशिक्षार्थी थकने लगे थे तब हमारे डिप्लोमा विद्यार्थियों ने दायित्व संभाला और कंधे से कंधा मिलाकर इस यज्ञ की सफलता में अपना पूरा योगदान दिया। उन्होंने सत्संग के दौरान सभी डिप्लोमा विद्यार्थियों को खड़ा कर काफी तारीफ़ की और सबने ताली बजाकर इसका सर्मथन भी किया।

अक्टूबर महीने में दीपावली के शुभ अवसर पर डिप्लोमा विद्यार्थियों ने यौगिक अध्ययन सत्र के विद्यार्थियों के साथ मिलकर बड़ा ही सुंदर सांस्कृतिक कार्यक्रम प्रस्तुत किया जिसे स्वामीजी और सभी आश्रमवासियों ने बहुत सराहा। नवम्बर महीनें में हमलोग रिखियापीठ गये और वहाँ भी हमलोगों ने अपने सारे दायित्वों को बड़े अच्छे ढंग से निभाया। मैं अनुभव कर रहा हूँ कि इतनी रचनात्मकता, सक्रियता और सकारात्मकता का मुख्य कारण यह रहा कि योग हमारे जीवन का अभिन्न अंग बन गया था। स्वामीजी ने कई बार अपने सत्संग में यह बात कही है कि जब तुम अपनी क्षमताओं व स्वाभाविक प्रवृत्तियों को नैसर्गिक रूप से व्यक्त करने लगते हो तभी कह सकते हो कि योग को आत्मसात् कर रहे हो।

अगर अपनी बात करूँ तो मैं यह कह सकता हूँ कि इस कोर्स के दौरान मुझे ऐसे अनुभव हुए जो मेरे जीवन की दिशा ही बदल देने वाले हैं। सबसे बड़ा अनुभव मैं यह मानता हूँ कि मुझे यह ज्ञात हुआ कि आखिर मेरे इस मनुष्य जीवन पाने का प्रयोजन क्या है अर्थात् क्यों मुझे इस पृथ्वी पर भेजा गया है। मैं यह बिल्कुल स्पष्ट अनुभव कर रहा हूँ कि मेरा जन्म अपने गुरु (श्री स्वामी सत्यानन्द जी) और स्वामीजी के कार्य को पूरा करने के लिए हुआ है। उसी में मेरे जीवन की पूर्णाहुति है और वही मेरे जीवन का लक्ष्य है। यह मैं इसलिए कह सकता हूँ कि मुझे ऐसा अनुभव होता है कि मैं आश्रम में जो भी कर रहा हूँ, अपने गुरु व स्वामीजी की

आज्ञा से कर रहा हूँ। आश्रम के हर छोटे-बड़े काम में मुझे बहुत ही आनंद व सुख की अनुभूति होती है। अब तो यही इच्छा है कि अपने बाकी के जीवन में अपनी गुरु परम्परा के कार्यों में कुछ सहयोग कर पाऊँ, उनके मिशन में अपना योगदान दे सकूँ। तभी मेरा जीवन सफल होगा, अन्यथा यह जीवन बेकार है।

शारीरिक स्तर पर भी एक बहुत बड़ा अनुभव हुआ है जिससे मेरे जीवन की दिशा में परिवर्तन आया है। योग आसन की कक्षा में मैंने यह अनुभव किया कि शरीर के बायें भाग की तुलना में मेरा दाहिना भाग काफ़ी अकड़ा हुआ है। इसका कारण यह हो सकता है कि अभी तक मेरी दाहिनी नासिका हमेशा बंद रहती थी क्योंकि उसमें नाक की हड्डी काफ़ी बढ़ी हुई है। मुझे लगता है कि अगर इस कोर्स के दौरान इस अकड़न के प्रति जागरूक होकर मैं इसका उपाय नहीं खोजता तो शायद आगे के 10-15 साल में जब मैं 65-70 का होता तो मुझे दाहिने तरफ लकवा मार सकता था। इस जागरूकता ने मुझे यह समझ दी कि मैं अपनी दाहिनी नासिका को कैसे भी ज़्यादा-से-ज़्यादा इस्तेमाल में लाऊँ तथा अपने शरीर के दाहिने भागों को लचीला बनाऊँ।

एक और बड़ा अनुभव रहा अपने क्रोध, अहंकार व इच्छाओं को साक्षी भाव से देखना और उस पर काफ़ी हद तक विजय प्राप्त करना। कई बार जब हम कर्मयोग व सेवा में लगे रहते हैं तो बहुत सारे विचार, जो कभी-कभी हमारे बुरे संस्कारों से जुड़े रहते हैं, आते रहते हैं। इन विचारों को साक्षी भाव से देखकर उन्हें अपने जीवन से निकाल फेंकना है। यह सब हमने योगनिद्रा व ध्यान के अभ्यासों में अनुभव किया है। इस तरह मैंने यह महसूस किया कि हम अपने अंदर छिपी कई कमियों को साक्षी भाव से देखकर उन्हें धीरे-धीरे दूर भी कर रहे हैं।

जैसे-जैसे यह कोर्स समापन की ओर बढ़ने लगा, वैसे-वैसे अपने अंदर एक दिव्यता, शुद्धता, पवित्रता व आनंद का अनुभव होने लगा। ऐसा लगा जैसे चारो तरफ़ आनंद ही आनंद है। आश्रम की हरियाली, फूलों की क्यारियाँ, पक्षियों का कलरव, खिली हुई धूप इत्यादि सब कुछ इतना मनमोहक लग रहा था। इतनी सुंदर प्राकृतिक छटा के बीच कभी सुंदर-काण्ड का पाठ करना तो कभी विष्णु सहस्त्रनाम और रामरक्षास्तोत्र का पाठ करना ईश्वर-साक्षात्कार से कम नहीं था। हर एक पल, हर एक वस्तु, हर एक व्यक्ति में ईश्वरत्व का अनुभव हो रहा था। मन तो ऐसा कर रहा था कि आश्रम में ही गुरुदेव की सेवा में लगा रहूँ और ईश्वरत्व का अनुभव करता रहूँ। यह कोर्स तो एक दिन समाप्त हो गया, परन्तु इतने सारे अनुभव, इतनी सारी यादें एक सुखद अनुभूति की तरह हमारे साथ रहेगें और इनका आनंद मैं हमेशा लेते रहूँगा।

अंत में बस इतना कहना चाहता हूँ कि हमारे पूज्य गुरुदेव व स्वामीजी का आशीर्वाद हम सब पर बना रहे ताकि इस कोर्स की सुंदर अनुभूति हमारे अंदर कायम रहे और जब हम बाहर जायें तो इन अनुभवों व यादों का न केवल खुद आनंद लें बल्कि दूसरों के लिए प्रेरणास्त्रोत भी बनें।

यौगिक कैप्सूल

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

सामान्य रूप से लोग सोचते हैं कि योगाभ्यास करने के लिये बहुत समय चाहिये, लेकिन ऐसी बात नहीं है। योगाभ्यास को सीखने में समय लगता है, पर एक बार अभ्यास सीख लेने के बाद उसे करने के लिये अधिक समय की आवश्यकता नहीं होती। तब योग को कैप्सूल के रूप में दिन के अलग-अलग समय में आवश्यकतानुसार उपयोग में लाया जा सकता है।

सुबह उठते ही आप अपने दैनिक कार्यों में संलग्न होने के पूर्व तीन संकल्पों के साथ तीन मंत्रों—महामृत्युंजय मंत्र, गायत्री मंत्र और दुर्गा जी के बत्तीस नामों का पाठ कर लिजिए। सुबह के समय मन विश्राम की स्थिति में रहता है, इसलिए ये संकल्प मन की अर्द्धचेतन अवस्था में एक बीज रूप में पड़ते हैं।

पहला संकल्प आरोग्य के लिए। मैं शारीरिक रूप से, मानसिक रूप से, हर स्तर पर स्वस्थ रहूँ, बीमार नहीं पड़ूँ, आरोग्य को प्राप्त करूँ, ऐसे संकल्प के साथ महामृत्युंजय मंत्र का पाठ ग्यारह बार प्रतिदिन प्रात:काल कीजिए। इसको पूरा करने के बाद अपने जीवन में बौद्धिक एवं भावनात्मक प्रतिभा की जागृति के लिए दूसरा संकल्प लीजिए और इस संकल्प के साथ गायत्री मंत्र का पाठ ग्यारह बार कीजिए। तीसरा संकल्प, जीवन से क्लेश और दु:ख की निवृत्ति तथा संयम एवं समरसता की प्राप्ति। इस संकल्प को लेकर दुर्गा जी के बत्तीस नामों का पाठ तीन बार कीजिए। इन सभी मंत्रों के पाठ को पूरा करने में दस-पन्द्रह मिनट का समय लगता है।

प्राय: लोग सबेरे उठते ही अपने मन को संसार से जोड़ देते हैं। उठते ही अखबार पढ़ते हैं या टीवी ऑन कर देते हैं। प्रात:काल जब आपका मन विश्राम की स्थिति में है और आप उसे सांसारिकता में लगा देते हो तो सांसारिकता का असर आपके मन को प्रभावित करता है। पर सबेरे उठते ही यदि आप मंत्रपाठ करते हैं तो आपके मन में एक सकारात्मक संकल्प का बीजारोपण होगा और एक सकारात्मक वातावरण का निर्माण भी होगा।

मंत्रपाठ सम्पन्न करने के बाद आप अपनी दैनिक चर्या में लग जाइये, नहाना-धोना इत्यादि कर लीजिये, और उसके पश्चात् पाँच आसनों का अभ्यास कर लिजिए। इससे ज्यादा आसनों की आवश्यकता एक स्वस्थ व्यक्ति को नहीं होती। रोगमुक्त रहने के लिये हम लोग पाँच आसन बतलाते हैं—ताड़ासन, तिर्यक् ताड़ासन, कटि चक्रासन, सूर्य नमस्कार और सर्वांगासन। इसके साथ आप दो प्राणायाम भी कर सकते हैं, नाड़ी-शोधन और भ्रामरी। इन आसनों और प्राणायामों

को करने में भी दस-पन्द्रह मिनट का समय लगता है। इन्हें करने के बाद आप नाश्ता कर सकते हैं और अपने कार्यालय जा सकते हैं।

कार्यालय से जब घर लौटते हैं तब सबसे पहले अपने कमरे में जाकर पन्द्रह मिनट शवासन में लेट जाइए और योगनिद्रा का अभ्यास करके अपने आपको तनावमुक्त बना लीजिये। दिनभर बाहर में कार्य करते समय जो तनाव, परेशानी या थकान हुई है उसे योगनिद्रा के अभ्यास से दूर किया जा सकता है। योगनिद्रा के अभ्यास के पश्चात् आप उठकर चाय-नाश्ता वगैरह कर लीजिये, लोगों से मिलना-जुलना कर लीजिये, क्लब में जाइये, पार्टी में जाइये, जो करना है कीजिये।

रात को सोने से पहले दस मिनट के लिये एक ध्यान का अभ्यास कर लिजिए। जब हम ध्यान का अभ्यास करते हैं तब मन खाली हो जाता है। हमारे जीवन में एक प्राकृतिक नियम भी है, जब हम भोजन करते हैं तब शरीर भोजन से पोषक तत्वों को ग्रहण कर लेता है और उसके अपशिष्ट पदार्थ को बाहर निकल देता है। यदि वह अपशिष्ट पदार्थ हमारे शरीर में जमा हो जाए तो रोग का कारण बनता है। इसीलिए शरीर से मल का त्याग आवश्यक है। ऐसी ही प्रक्रिया हमारे मन के साथ भी होती है। इसलिए मन को स्वस्थ बनाए रखने के लिए मन को तनावमुक्त करना और अवांछित विचारों को बाहर निकालना आवश्यक होता है।

इस प्रकार पन्द्रह मिनट का मंत्रपाठ सबेरे उठते ही, पन्द्रह मिनट आसन-प्राणायाम का अभ्यास नाश्ते के पहले, पन्द्रह मिनट योगनिद्रा का अभ्यास कार्यालय से आने के बाद और दस मिनट ध्यान का अभ्यास सोने से पहले करना है। इन छोटे-छोटे कैप्सूलों के रूप में आप योग को सरलता से अपनी जीवनशैली का अंग बना सकते हैं।

–26 जुलाई 2014, रेलवे क्लब, बेल्वेडियर पार्क, कोलकाता

कल्पतरु की छाँव में

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

जप कितने प्रकार से किया जाता है?

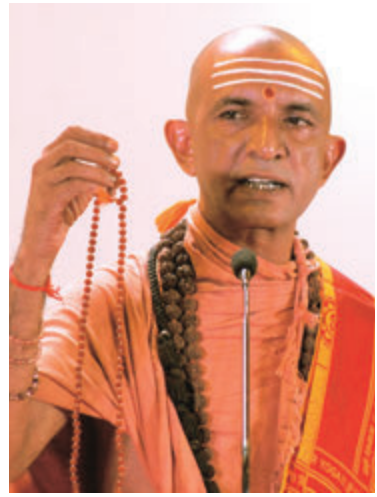

जप मुख्यत: तीन प्रकार का होता है। पहला है मानसिक जप जो मन में बोलते हैं, दूसरा है उपांशु जप जो बुदबुदा कर बोलते हैं, और तीसरा है बैखरी जप जो बोलकर करते हैं। सबसे उत्तम होता है मानसिक जप, उसके बाद है उपांशु जप और फिर है बैखरी जप।

मानसिक जप करते समय मन अंतर्मुखी हो जाता है और निद्रा आने लगती है। जब निद्रा आने लगे और मन ढीला पड़ने लगे तो उपांशु जप मतलब बुदाबुदाकर जप करना आरंभ कर देना चाहिए। जब बुदबुदाते-बुदबुदाते भी निद्रा आ रही हो तब बैखरी जप शुरू कर देते हैं मतलब मंत्र को बोलकर करने लगते हैं। फिर जब सजगता आ जाती है तब पुन: मानसिक जप प्रारंभ कर सकते हैं। जप की इन तीन प्रक्रियाओं में हमेशा परिवर्तन होते रहता है। मुख्य बात यही है कि मंत्र जप करते समय सोना नहीं है।

वर्तमान में सजगता को कैसे कायम रखें?

सामान्यत: लोग भूतकाल की घटनाओं के बारे में या भविष्य की चिंता करते हैं, पर वर्तमान के प्रति सजग नहीं रहतें हैं। योग में इसी मानसिकता को परिवर्तित किया जाता है। बीते हुए कल को एक पुराना अध्याय माना जाता है जिससे हमें कुछ सीखें मिली हैं। आने वाला कल अज्ञात है, इसलिए उसकी चिन्ता नहीं करनी है। कल तक हमने जो सीखा था, आज उसे अपने व्यावहारिक जीवन में उतारने का समय है। अगर कल किसी से झगड़ा हुआ था तो आज हम उसकी नकारात्मकता को लेकर नहीं चलेंगे, बल्कि हम सोचेंगे कि झगड़ा क्यों हुआ, हमारा क्या दोष था, हम कैसे उसको सम्भाल सकते थे, हम कैसे उसको उतना आगे नहीं बढ़ने दे सकते थे? उस घटना से सकारात्मक सीख लेने का प्रयास करेंगे। उस पुराने अध्याय को बंद करके आज के दिन को जीवन के एक नये अध्याय के रूप में शुरू करेंगे।

अपने जीवन में इसी सिद्धान्त का पालन करना चाहिए। जो अपनी सजगता को वर्तमान में रख सकता है वही योगी कहलाता है।

मैं यह कैसे जान सकता हूँ कि मैं क्रियायोग के लिए तैयार हूँ?

सामान्यत: क्रियायोग के पहले हठयोग और राजयोग में प्रवीणता प्राप्त करना आवश्यक माना जाता है। लेकिन यह व्यक्ति के अपने सामर्थ्य पर भी निर्भर करता है, और उम्र के अनुसार भी योग प्रशिक्षण में बदलाव होता है। जो अधिक उम्र के लोग हैं वे हठयोग नहीं कर पाते हैं, आसन-प्राणायाम नहीं कर पाते हैं। इसका मतलब यह नहीं कि वे क्रियायोग से वंचित रह जायेंगे। उन्हें अलग तरह की तैयारियाँ करनी होती हैं, जो राजयोग पर आधारित हैं। वे हठयोग को छोड़ सकते हैं और राजयोग में प्रवीणता प्राप्त करके क्रियायोग का अभ्यास प्रारंभ कर सकते हैं। अगर समय से पहले क्रियायोग का अभ्यास किया जाए तो उससे कोई उपलब्धि नहीं होती है। क्रियायोग के लिए आवश्यक तैयारी न होने और उचित आधार नहीं बन पाने के कारण अभ्यास से जो भी उपलब्धियाँ प्राप्त होती हैं वे स्थायी नहीं रहतीं। इसलिए क्रियायोग के लिए शरीर और मन को तैयार करना आवश्यक होता है।

बच्चों की दीक्षा के लिए सही उम्र क्या है? और यदि आप से दीक्षा दिलवाना चाहें तो कब ले सकते हैं?

हमारी भारतीय संस्कृति में बच्चों को आध्यात्मिक संस्कार देने के लिये आठ वर्ष की आयु निश्चित की गई है। बच्चों को यह जो आध्यात्मिक संस्कार दिया जाता है, उसे पण्डित और ब्राह्मण लोग कहते हैं उपनयन संस्कार। आजकल केवल जनेऊ देकर समाप्त कर देते हैं, लेकिन यह वास्तविक विधि नहीं है। जनेऊ तो मात्र एक सामाजिक पहचान है कि इस व्यक्ति का संस्कार हुआ है। लेकिन इसके साथ तीन चीजें बतलाई जानी चाहिए—पहला गायत्री मंत्र, दूसरा सूर्य नमस्कार का अभ्यास और तीसरा नाड़ीशोधन प्राणायम।

प्राचीन समय में, संपूर्ण भारतवर्ष में सभी लड़के-लड़कियों को आठ वर्ष की उम्र में यह दीक्षा प्रदान की जाती थी। उपनयन संस्कार से बालक की सामाजिक पहचान बनती थी कि वह मानव समाज का एक अंग बन चुका है, उसका एक अलग अस्तित्व हो गया है और वह द्विज बन चुका है। द्विज एक सामाजिक पहचान होती थी जैसे आजकल स्कूल-कॉलेज से प्राप्त डिग्री बच्चों की पहचान होती है।

वर्तमान में लोग चाहते हैं कि काम जल्दी हो जाए, क्योंकि आजकल के लोगों के पास समय का बहुत अभाव रहता है। शादी-विवाह में भी आप लोग कहते हैं कि पण्डितजी जल्दी-जल्दी सारी विधियाँ खत्म करो। पण्डित जी बोलते हैं, एक घण्टा लगेगा, पर आप बोलते हो, नहीं आधे घण्टे में खत्म करो। जिस काम में

एक घण्टा लगता है उसे आप आधे घण्टे में समाप्त कराना चाहते हो। जिस काम में आधा घण्टा लगता है उसे आप दस मिनट में खत्म कराना चाहते हो। हर काम जल्दी-जल्दी कराना चाहते हो। इस कारण से बहुत सारी चीजें छूटने लगती हैं और कालांतर में लोग उन चीजों को भूलने लगते हैं। आज यही हुआ है, लोग अपनी सभ्यता-संस्कृति को ही भूल गए हैं, और यह परिवर्तन आप जैसे गृहस्थ लोगों के कारण हुआ है, हम जैसे संन्यासियों के कारण नहीं।

भारत में यह सर्वमान्य परम्परा हुआ करती थी कि आठ साल की आयु में बच्चों का उपनयन संस्कार किया जाए। इस संस्कार में बच्चों को गायत्री मंत्र दिया जाता था उनकी प्रतिभा की जागृति के लिए, सूर्य नमस्कार का अभ्यास बतलाया जाता था सूर्य से जीवनी शक्ति को प्राप्त करने के लिए और नाड़ी शोधन प्राणायाम बतलाया जाता था, मस्तिष्क को शान्त करने के लिये, चंचलता को शान्त करने के लिये, एकाग्रता को बढ़ाने के लिये।

जहाँ तक बच्चे को दीक्षा दिलवाने का सम्बन्ध है तो आठ वर्ष की आयु होने के बाद कभी भी हमारे पास दीक्षा के लिए आ सकते हैं।

–25 जुलाई 2014, रंगमंच हॉल, स्वभूमि हेरिटेज प्लाज़ा, कोलकाता

योगाभ्यास करो

अध्यात्म की ओर खिंचाव अच्छा है।
किन्तु सोचने से क्या?
योगाभ्यास करो।
याने आसन-प्राणायाम-जप।
कर्मयोग से वृत्ति-सजगता आती है
खाली बैठने से वृत्ति-शून्यता।
वृत्ति-शून्यता तमस् का मार्ग है
वृत्ति-सजगता सत्त्व का।
जीवन में उन्नति के लिए प्रयोजन एक!
अहर्निश एक ही बात सोचो,
एक काम में मन लगाओ
उसकी पूर्णता तक,
इसे कहते हैं धुन,
इसे समझो, करो।

–स्वामी सत्यानन्द सरस्वती

योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट

बुद्धि, भावना और कर्म

स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती

पृष्ठ 58, ISBN: 978-93-81620-07-6

बुद्धि, भावना और कर्म का समग्र योग, स्वामी निरंजनानन्द द्वारा गंगा दर्शन में अक्टूबर 2010 में दिये सत्संगों का विषय था। इन सत्संगों में स्वामीजी ने सरस एवं सुबोध शैली में समझाया कि किस प्रकार इन प्रतिभाओं की प्रकृति को समझकर और एक क्रमबद्ध प्रणाली द्वारा इन्हें परिष्कृत एवं रूपान्तरित कर, हम अपने मन और भावनाओं में सामंजस्य ला सकते हैं और अपने कर्मों के प्रति नवीन दृष्टिकोण अपना सकते हैं। ऐसी स्थिति में हमारे व्यक्तित्व का सर्वांगीण विकास सुलभता से हो सकता है।

उपलब्ध

पुस्तकों की मूल्य सूची एवं क्रयादेश प्रपत्र प्राप्त करने के लिए सम्पर्क करें–
योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट, गंगा दर्शन, फोर्ट, मुंगेर, बिहार 811201

दूरभाष : 91-6344-222430, 6344-228603, 09304799615 फैक्स : 91-6344-220169

जवाब के लिए अपना पता लिखा, डाकटिकट लगा लिफाफा भेजें, अन्यथा आपके आवेदन पर विचार नहीं किया जाएगा।

सत्यानन्द योग वेबसाइट

SATYANANDA YOGA
BIHAR YOGA

www.biharyoga.net

यह बिहार योग पद्धति की मुख्य वेबसाइट है जिसमें सत्यानन्द योग, बिहार योग विद्यालय, बिहार योग भारती, शिवानन्द मठ, सीता कल्याणम् महोत्सव तथा योग पब्लिकेशन्स ट्रस्ट सम्बन्धी जानकारियाँ उपलब्ध हैं।

www.rikhiapeeth.in

यह वेबसाइट सभी साधकों के लिए स्वामी शिवानन्द जी की 'सेवा, प्रेम और दान' की मौलिक शिक्षाओं से जुड़े रहने का सुगम साधन है। यहाँ रिखियापीठ की गतिविधियों, कार्यक्रमों और सत्रों की जानकारी के अतिरिक्त प्रेरक सत्संग भी उपलब्ध हैं।

'यौगिक जीवन' स्वामी निरंजन के संग

www.biharyoga.net/living-yoga/ पर श्री स्वामी सत्यानन्द सरस्वती के उत्तराधिकारी स्वामी निरंजनानन्द सरस्वती के मिशन सम्बन्धी लेख, संदेश एवं समाचार उपलब्ध हैं।

www.yogamag.net

योगा पत्रिका के लेखों के संग्रह तथा पूरे विश्व में सत्यानन्द योग केन्द्रों और शिक्षकों के सम्पर्क सूत्रों और गतिविधियों की जानकारी के लिए इस वेबसाइट को देखें।

आवाहन वेबसाइट

www.biharyoga.net/sannyasa-peeth/avahan/ पर संन्यास पीठ की द्वैमासिक पत्रिका, *सत्य का आवाहन* उपलब्ध है, जिसमें श्री स्वामी शिवानन्द, श्री स्वामी सत्यानन्द एवं स्वामी निरंजनानन्द की शिक्षाओं तथा संन्यास पीठ की गतिविधियों की जानकारी है।

- Registered with the Department of Post, India
  Under No. HR/FBD/298/13-15
  Office of posting: BPC Faridabad
  Date of posting: 1st-7th of every month
- Registered with the Registrar of Newspapers, India
  Under No. BIHHIN/2002/6306

issn 0972-5725

bar code

गंगादर्शन के सत्र एवं कार्यक्रम 2015

जुलाई 27-30	स्वामी निरंजनानन्द के सान्निध्य में गुरु पूर्णिमा सत्संग एवं आराधना
जुलाई 31	गुरु पादुका पूजन
अगस्त 2015-मई 2016	योग अध्ययन में डिप्लोमा (अँग्रेजी)
अगस्त 1-30	योग अनुदेशक सत्र (अँग्रेजी)
सितम्बर 8	स्वामी शिवानन्द जन्मोत्सव
सितम्बर 12	स्वामी सत्यानन्द संन्यास दिवस
अक्टूबर 1-जनवरी 25	चातुर्मासिक योग अध्ययन सत्र (अँग्रेजी)
अक्टूबर 3-20	योग स्वास्थ्य रक्षा सत्र-मधुमेह (हिन्दी)
दिसम्बर 25	स्वामी सत्यानन्द जन्मदिवस
प्रत्येक शनिवार	महामृत्युंजय हवन
प्रत्येक एकादशी	भगवद् गीता पाठ
प्रत्येक पूर्णिमा	सुन्दरकाण्ड पाठ
प्रत्येक 5 एवं 6 तारीख	श्री स्वामी सत्यानन्द जी की महासमाधि का स्मरणोत्सव
प्रत्येक 12 तारीख	अखण्ड रामचरितमानस पाठ

आश्रम में मोबाइल फोन लाना वर्जित है। अपना मोबाइल फोन कदापि अपने साथ न लाएँ।

उपर्युक्त सत्रों/ कार्यक्रमों के सम्बन्ध में विशेष जानकारी के लिए सम्पर्क करें-

बिहार योग विद्यालय, गंगादर्शन, मुंगेर, बिहार 811201

फोन : 06344-222430, 06344-228603, 9304799615 फैक्स : 06344-220169

वेबसाइट : www.biharyoga.net

✉ अन्य किसी जानकारी हेतु अपना पता लिखा और डाक टिकट लगा हुआ लिफाफा भेजें, जिसके बिना उत्तर नहीं दिया जायेगा।